आधुनिक साहित्य

प्रतापनारायण टंडन

विद्यामंदिर प्रकाशन

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक में मेरे पिछले दो-तीन वर्षों में लिखे गए निबन्ध संगृहीत हैं। इनमें से चार-पाँच सैद्धांतिक समीक्षा-सम्बन्धी लेखों को छोड़ कर शेष सभी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से व्यावहारिक आलोचना से सम्बन्धित हैं। इन निबन्धों में जहाँ एक ओर मैंने हिंदी में प्रवाहित विभिन्न साहित्य-धाराओं की परीक्षा तथा उत्कृष्ट कृतियों के मूल्यांकन की चेष्टा की है, वहाँ दूसरी ओर अपनी कतिपय साहित्यिक-स्थापनाएँ भी की हैं, जो साहित्य-सम्बन्धी मेरे दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करती हैं।

इस संग्रह में चूँकि स्फुट निबन्धों को ही संगृहीत किया गया है, अतः इसमें किसी प्रकार की क्रम-बद्धता खोजने की चेष्टा करना व्यर्थ होगा। हाँ, उपर्युक्त कारण से कहीं-कहीं किन्हीं विचारों की पुनरावृत्ति मिल सकती है। इस पुस्तक के दो-तीन निबन्ध मेरे हिंदी-उपन्यास सम्बन्धी प्रबन्ध के अंश हैं।

विश्व-उपन्यास सम्बन्धी तथा हैनरी जेम्स और ई० एम० फार्स्टर के उपन्यास-सिद्धांत सम्बन्धी निबन्ध विदेशी-उपन्यास-साहित्य तथा उपन्यास समीक्षा का परिचय कराने के उद्देश्य से लिखे गए थे।

प्रतापनारायण टंडन

क्रम

हिंदी-साहित्य में गतिरोध का प्रश्न

पिछले कुछ समय से हिंदी साहित्य में गतिरोध होने की आवाज उठाई जाने लगी है। हम इस निबंध में, संक्षेप में, इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या हिंदी साहित्य में गतिरोध की स्थिति वास्तव में है? यदि हाँ, तो उसके उत्पन्न होने के क्या कारण हैं? और यदि नहीं, तो इस प्रश्न को उठाया ही क्यों जाता है?

यह समझने के लिए कि हिंदी साहित्य में गतिरोध की स्थिति है या नहीं, हमें उसके विविध अंगों की वर्तमान प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालनी होगी; क्योंकि यदि गतिरोध है, तो वह किसी एक के क्षेत्र में कदापि नहीं होगा। गतिरोध एक ऐसी वस्तु है, कि जहाँ तक साहित्य का संबंध है, उसका प्रभाव व्यापक होता है, साहित्य के प्रत्येक अंग में उसकी संभावनाएँ हो जाती हैं। हम ऐसा कदापि नहीं कह सकते कि हिंदी पद्य-साहित्य में गतिरोध है और हिंदी गद्य-साहित्य में नहीं, अथवा हिंदी गद्य-साहित्य के नाटक, रेखाचित्र आदि अंगों में गतिरोध है और उपन्यास अथवा कहानी में नहीं। हमें, कम-से-कम, यह तो मानकर चलना ही होगा, कि गतिरोध की स्थिति, यदि हिंदी साहित्य में है, तो सभी अंगों में है। गद्य तथा पद्य, अथवा सृजन तथा आलोचना, कोई भी इससे मुक्त नहीं है।

यहाँ यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि हिंदी साहित्य में गतिरोध की संभावना क्यों और कैसे हुई? इस नारे को बुलंद करनेवाले कौन हैं? उनकी अपनी साहित्य-संबंधी मान्यताएँ क्या हैं? और वे क्या समझकर अथवा किस आधार पर आज यह कहते हैं कि हिंदी साहित्य में गतिरोध है?

इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें थोड़ी और गहराई में जाना पड़ेगा। हम जानते हैं कि छायावादी युग की समाप्ति के साथ ही इस धारा के प्रमुख कवियों की सृजन-शक्ति मंद हो गई। कहने की आवश्यकता नहीं, कि आज से कुछ वर्षों पूर्व छायावाद को लेकर साहित्य के क्षेत्र में जो विवाद उठ खड़ा हुआ था, और विभिन्न दल बन गये थे, उनमें उस दल के लोग, जो यह कहते थे कि छायावाद का युग समाप्त हो चुका है, यह अनुभव कर रहे थे कि अब उस वाद की कविता 'आउट आफ डेट' हो चुकी, वह अब लोगों को उतनी नहीं भाती। हम पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों था। क्या छायावादी कवियों की कविता में स्थायित्व के गुणों का अभाव था? वे क्यों इतनी अस्थायी सिद्ध हुईं? इसका उत्तर यही होगा, कि यदि ये कवि अपनी कविता को विकास के मार्ग पर अग्रसर करने में निरंतर सचेष्ट रहते, तो संभवतः ऐसा कहने का आज कोई साहस न करता। इसके अलावा एक बात और भी है। आज के संघर्षमय संसार का मनुष्य छाया-वादी विचारधारा से संतुष्ट नहीं होता। विपत्तियों से जीवन घिरा रहने पर भी उसे मात्र पलायनवाद नह सूझता, वह कष्टों से जूझना चाहता है और उसे इसके लिए प्रेरणा देने को एक स्वस्थ, ठोस जीवन-दर्शन की आवश्यकता है। कहने की जरूरत नहीं, कि उसके इस अभाव की पूर्ति करने में छायावाद को सफलता नहीं मिली।

आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया है। एक तो, रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य की कथावस्तु से होता है और जिसमें कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम को अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। और दूसरा, वाक्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अथ में। शुक्लजी ने हिंदी के प्रमुख छायावादी कवियों को, अपने उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार, दो वर्गों में विभक्त कर दिया। पहले वर्ग में वे महादेवी को रखते हैं और दूसरे में पंत, प्रसाद, निराला तथा उन सभी कवियों को, जो प्रतीक-पद्धति या चित्रभाषा-शैली की दृष्टि से छायावादी कहलाए। स्पष्ट है, कि इन दोनों वर्गों में से किसी एक का कोई भी कवि मानव-समाज की आधुनिक समस्याओं के लिए कोई भी मार्ग निकालने के लिए प्रयत्नशील नहीं हुआ, उसकी चेतना इस दिशा में जागरूक न होकर सुप्तावस्था में ही रही।

छायावादी विचारधारा में अपने मतलब का कुछ न पाकर, संघर्षों से घिरे हुए आज के मनुष्य ने तीव्र असंतोष का अनुभव किया। फलतः साहित्य के क्षेत्र में कुछ ऐसे लोगों का आगमन हुआ, जो मार्क्स के भौतिकवाद से प्रभावित थे। उन्हें मानव-जीवन की अनेक समस्याओं का हल साम्यवादी विचारधारा में दिखाई देता था। इन सभी ने हिंदी साहित्य में जिस वाद का प्रारंभ किया अथवा जिसमें योग दिया, वह प्रगतिवाद था, जिसके प्रारंभिक कवियों में 'नवीन', 'दिनकर', 'अंचल', नरेंद्र शर्मा तथा शिवमंगल सिंह 'सुमन' के नाम उल्लेखनीय हैं। हम यहाँ प्रगतिवाद अथवा और किसी वाद की विवेचना न करके सिर्फ यह कहेंगे, कि इन वादों का जन्म साहित्य के प्रति जनता की बदलती हुई रुचि के फलस्वरूप हुआ था।

अब हम गद्य के क्षेत्र में—विशेष रूप से उपन्यास में—यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि उसमें कैसी स्थिति है। उत्तर प्रेमचंद-काल के कुछ प्रमुख उपन्यासकारों को यदि हम लें—उन लेखकों को, जो प्रेमचंद के समय से ही लिख रहे हैं, या जिन्होंने प्रेमचंद के बाद लिखना शुरू किया—तो हम देखेंगे कि उन्होंने अपने उपन्यासों में एक विशेष प्रकार की कथावस्तु का उपयोग किया है। सन् पैंतालीस से लेकर पचास तक के बीच लिखे गए उपन्यासों में अधिकांश ऐसे हैं, जिसकी कथावस्तु राजनीति से संबंध रखती है, और जिनमें स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व भारतीयों द्वारा किए गए आंदोलनों, सरकार द्वारा किए गए दमन तथा अत्याचारों अथवा भारत-विभाजन के कारण उत्पन्न हुई परिस्थितियों और विषमताओं का वर्णन है। हमारे पुराने उपन्यासकारों के—जो प्रेमचंद युग के तो हैं—लेकिन आज तक साहित्य-सेवा में लगे हैं, यदि हम देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि—पैर उखड़ते-से जान पड़ते हैं।

विचारपूर्वक देखने पर हमें मालूम होगा कि हमारे हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में भी गतिरोध के स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि यहाँ हम उन सभी का विश्लेषण नहीं करेंगे। हाँ, उनके कारणों पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है।

किसी भी भाषा के साहित्य में गतिरोध अथवा इस-जैसी ही कोई स्थिति उत्पन्न होना, वहाँ के मान्यता-प्राप्त साहित्यिकों की शक्ति कम होने

अथवा उनकी प्रसिद्धि घट जाने का प्रमाण है और ऐसी स्थिति में, उन मान्यता-प्राप्त साहित्यकारों पर जो प्रतिक्रिया होती है, उसी के फलस्वरूप गतिरोध की आवाज उठाई जाती है; क्योंकि ऐसे लोग, जिनका महत्व साहित्य के मानदंड, मान्यता, अथवा आवश्यकता के परिवर्तित हो जाने के कारण कम रह गया है, या जो किसी वाद-विशेष के समर्थक होते हैं—अपनी शक्ति और प्रसिद्धि कम होते देख इस आवाज को बुलंद करने में स्वाभाविक रूप से योग देते हैं।

एक और कारण है जो गतिरोध की स्थिति उत्पन्न करने में सहायक होता है। आज, जब विश्व की अनेक भाषाओं—अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन तथा रशियन आदि—के साहित्य अत्यंत समृद्ध अवस्था में हैं, तब जो पिछड़ी भाषाएँ इन्हीं की कोटि में आने का प्रयत्न कर रही हैं, वे इन भाषाओं के साहित्यिकों की साहित्यिक मान्यताओं को लगभग ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेती हैं। वे इन भाषाओं के साहित्यकारों के उद्धरणों का हवाला भी अपने यहाँ देती हैं। यह एक प्रकार का 'इनफीरियारिटी कांप्लेक्स' है, और हम समझते हैं कि यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिंदी भी इससे मुक्त नहीं है। हमारे एक विद्वान् समीक्षक ने यह स्वीकार किया है कि अज्ञेय की कथा-कृतियों में पश्चिमी चिंतकों के उद्धरणों की भरमार इस हीनता-बुद्धि का साहित्यिक निदर्शन है, और 'नदी के द्वीप' की रचना में भी नीगानामूलक गतिरोध के चिह्न स्पष्ट हैं।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि गतिरोध का किसी भाषा के साहित्यकार पर व्यक्तिगत रूप से क्या प्रभाव पड़ता है। और, यदि वहाँ गतिरोध की स्थिति हो, तो क्या यह आवश्यक है कि कोई भी साहित्यकार उससे मुक्त न हो?

हम ऊपर कह आए हैं कि गतिरोध का प्रभाव व्यापक होता है। व्यापक केवल इस अर्थ में कि साहित्य के किसी भी अंग का इससे अछूता रह सकना कठिन है, इस अर्थ में नहीं कि प्रत्येक साहित्यकार के संबंध में भी ऐसा ही होगा। कोई लेखक या कवि, किसी भाषा के साहित्य में गतिरोध की स्थिति रहते हुए भी, स्वयं उसके प्रभाव से मुक्त रह सकता है।

हिंदी साहित्य में गतिरोध का एक और लक्षण है। हमारे आधुनिक

युग की कोई भी कृति उस स्टैंडर्ड तक नहीं पहुँच पाई, जो अंतर्राष्ट्रीय साहित्य के मापदंड के अनुसार प्रथम श्रेणी की हो। यद्यपि हम इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते कि प्रसादजी ने 'कामायनी', गुप्तजी ने 'साकेत' तथा प्रेमचंदजी ने 'गोदान' की रचना द्वारा इस दिशा में प्रयत्न अवश्य किया था।

आज के जीवन में मूल्यों की अराजकता भी गतिरोध का कारण माना जाता है।

गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर एक साहित्यकार—जो उससे प्रभावित होता है—यह अनुभव करता है कि उसमें इतनी क्षमता नहीं है कि वह नई मान्यताओं के अनुसार पाठकों को एक स्वस्थ जीवन-दर्शन दे सके। ऐसी स्थिति में या तो उसकी सृजन-शक्ति ही समाप्त हो जाती है, या वह एक ही बात को दुहराने लगता है—अपनी बाद की कृतियों में। अनेक छायावादी कवियों तथा उपन्यासकार जैनेंद्रजी के संबंध में भी पुरानी अनुभूतियों को दुहरानेवाली यह बात कही जाती है।

एक उतरदायित्व पाठकों का भी हो जाता है। किसी साहित्य में गतिरोध की स्थिति उत्पन्न होते न होते, उसके पाठकों की विवेक-शक्ति मंद हो जाती है, उनमें कोई चेतना ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं रहती और इसमें संदेह नहीं, कि इससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि उनका बौद्धिकस्तर अपेक्षाकृत कम ऊँचा है। हमें अपना बौद्धिक-स्तर ऊँचा उठाने और अपने-आप में सांस्कृतिक-चेतना उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए क्योंकि हिंदी के पाठकों के साथ भी संभवतः ऐसी ही बात है।

———

सृजनात्मक ह्रास के कारण

इस निबंध में, हम संक्षेप में, उन दशाओं या स्थितियों के कारणों पर प्रकाश डालेंगे, जो किसी साहित्यकार की सृजन-शक्ति के कुंठित हो जाने या मंद पड़ जाने के द्योतक हैं।

हम ऐसा एक-एक कारण क्रमशः लेते चलेंगे और उससे संबंधित अन्य संकेत भी करते चलेंगे। यह तो शायद हर आदमी माने को तैयार होगा कि एक साहित्यकार के (एक साहित्यकार होने के नाते) कुछ दायित्व होते है। साहित्य-साधना के क्षेत्र में, उसे कम से कम उन दायित्वों का निर्वाह अवश्य करते रहना पड़ता है। ये दायित्व विभिन्न प्रकार के होते हैं और विभिन्न क्षेत्रों से संबंध रखते हैं। उदाहरण के लिए हम यह कहें, कि एक साहित्यकार के लिये यह जरूरी होता है कि वह सामयिक, परिवर्तित, जन-मनोवृत्तियों या पाठकों के टेस्ट से परिचित होता रहे और उसके अनुसार अपने साहित्य को भी वैसे ही मोड़ देता रहे। यदि वह ऐसा नहीं करता है (अथवा नहीं कर सकता है), तो उसे इसके कई दुष्परिणाम देखने पड़ते हैं। एक तो यही, कि वह बहुत जल्दी आउट आफ डेट हो जाता है (या घोषित कर दिया जाता है)। ऐसा किसी वाद विशेष के विरोधी या समर्थक होने मात्र से नहीं होता है। दरअसल बात यह है कि जिस साहित्यकार की अनुभूतियों में, अधिक गहराई, अधिक व्यापकता, अधिक पकड़ और अधिक स्पष्टता होती है, वह कभी आउट आफ डेट हो ही नहीं सकता; क्योंकि ये सब गुण साहित्य के स्थायित्व में सहायक होते हैं। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी अथवा सूर ने जिन अनुभूतियों को अपने काव्य में आश्रय दिया है, उनमें

उपर्युक्त विशेषतायें न होतीं तो क्या आज—हजारों वर्षों के बाद भी—हमें वे उतना ही आनंद दे सकतीं ? क्या वे आउट आफ डेट न हो जातीं ?

एक साहित्यकार में कुछ अन्य गुण भी अपेक्षित हैं। उसे सूक्ष्म दृष्टि संपन्न होना चाहिए। इससे मतलब यह है कि उसमें इस बात की क्षमता होनी चाहिये कि वह अपनी वर्णित वस्तु के भीतर, काफी गहराई तक पैठ सके। जो साहित्यकार जीवन के जिस पक्ष या पहलू का अपेक्षाकृत सूक्ष्मतर दृष्टि से अवलोकन करके, एक नई दृष्टि से उसे प्रकाशित करता है, अथवा मानव-मूल्यों का उद्घाटन करता है, वह इस दृष्टिकोण से, उस क्षेत्र विशेष में, अधिक सफलता प्राप्त करता है। किसी भी प्रकार के वर्णन के छिछले, अथवा विचारों के थोथले होने का कारण इस गुण (सूक्ष्म-दृष्टि संपन्नता) का अभाव या न्यूनता ही होती है। और इससे यह स्पष्ट है कि जो साहित्यकार इस दोष से मुक्त होते हैं, दूसरे शब्दों में, सूक्ष्म-दृष्टि-संपन्न होते हैं, उनके साथ ऐसा नहीं होता। वे अद्वितीय होते हैं—अपने क्षेत्र के सम्राट ! और यह इस बात का परिचायक होता है कि कौन साहित्यकार जीवन के किस पक्ष का अधिक सूक्ष्मता से अवलोकन कर सका है (यह उसकी सफलता ही होती है)। उदाहरण के लिये, यदि हम हिंदी-कवियों में यह गुण देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि तुलसी जिस सहृदयता से राम के अयोध्या विछोह का वर्णन (जो काफी विस्तृत है और विस्तार भी इसी गुण का परिचायक है) कर सके हैं, वैसा अन्य कवि (राम काव्य के रचयिता) नहीं। सूर के वात्सल्य-वर्णन के संबंध में भी ऐसी ही बात है। यदि हम विचारपूर्वक देखें, तो हम निश्चय ही इस नतीजे पर आयेंगे कि अनेक आधुनिक कवियों (श्रेष्ठ कवियों) की दृष्टि भी इतनी सूक्ष्म या संपन्न नहीं है। और हमारी सम्मति में इसीलिये वे अपना अनुभूतियों को वैसी अभिव्यक्ति नहीं दे सकते। यही उनकी कविता के अस्थायी होने का एक मुख्य कारण है।

अब हम एक अन्य बात की ओर संकेत करेंगे। एक साहित्यकार में अपनी दृष्टि का परिष्कार करने की भी सामर्थ्य होनी चाहिए। यह बात चूँकि काफी महत्वपूर्ण है अतः हम इस पर जरा गहराई में जाकर विचार करेंगे। हम इसे यों समझने का प्रयत्न करें—हमारे हिंदी साहित्य के इतिहास

के विभिन्न कालों में एक विशेष प्रकार की प्रवृत्ति की प्रधानता रही है (प्रत्येक काल में)। लेकिन क्या यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि ऐसा क्यों था ? क्यों वीरगाथा काल में वीर रस की, भक्ति काल में भक्ति की और रीति काल में शृंगार की ही (अधिकांश) कवितायें लिखी गईं ? क्यों वीरगाथा काल में कोई श्रेष्ठ भक्त-कवि, भक्ति-काल में शृंगार और रीतिकाल में वीररस का कवि नहीं हुआ ? इसका कारण यही था कि इन युगों के अधिकांश कवि अपनी रुचि का समय के अनुसार परिष्कार करते रहे थे, अपने को उन्हीं के अनुरूप बनाने की चेष्टा करते रहे थे, यद्यपि कुछ कवि इसका अपवाद भी हैं।

हम यहाँ भक्ति या रीतिकाल का मूल्यांकन नहीं कर रहे हैं। लेकिन चूँकि हम यह देख चुके हैं कि वह कविता आज भी हमें वैसा आनंद देने में समर्थ है अतः हमें उसके इस स्थायित्व के कारणों की खोज करना चाहिये। और हम उन्हीं कारणों, गुणों या विशेषताओं की खोज कर रहे हैं। साथ ही चूँकि आधुनिक युग के कवियों की कविता वैसी नहीं है अतः हम उसकी न्यूनतायें भी देखने की कोशिश करें। स्थूल रूप से हम यही कह सकते हैं कि आधुनिक कविता में उन गुणों का अभाव या कमी है। यही कारण है कि वे शायद दस-पंद्रह वर्षों तक भी जीवित नहीं रह पातीं। और आधुनिक कवियों की सृजन-शक्ति (उपन्यासकारों या आलोचकों की भी) कुंठित हो जाती है—साहित्यिक जीवन के प्रारंभिक दस या पंद्रह वर्षों बाद ही—या मंद पड़ जाती है। और यहाँ एक बात ध्यान देने की है—जब ऐसी ही स्थिति किसी भाषा के बहुत से साहित्यकारों के साथ होती है, तब उसमें गतिरोध की संभावनायें या स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

तो हम कह रहे थे कि कुछ ऐसे कारण हैं, जो आधुनिक साहित्य के स्थायित्व में बाधक हैं। वे कौन से कारण हैं और क्यों हैं ?—यह प्रश्न तत्काल ही हमारे सामने आता है। पहले प्रश्न का उत्तर है—साहित्यकारों की दृष्टि का परिष्कार न होना, उनकी दृष्टि में सूक्ष्मता न होना, साहित्य के मानदंडों में परिवर्तन और उनमें अपनी अनुभूतियों को सहज अभिव्यक्ति देने की सामर्थ्य न होना। और दूसरे प्रश्न का उत्तर है—उनमें अध्ययन-

शीलता की कमी, उनका जन-रुचि से परिचित न होना और कठिन साधना न करना।

हमारी सम्मति में यदि किसी साहित्यकार की दृष्टि परिष्कृत और सूक्ष्म होगी, उसमें साहित्य के परिवर्तित मानदंडों के अनुकूल अपने को ढालने की क्षमता होगी और अपनी अनुभूतियों को सहज अभिव्यक्ति देने की सामर्थ्य होगी, वह अध्ययनशील तथा जनरुचि से परिचित होगा, उसकी अपनी साहित्यिक मान्यताएँ होंगी और वह कठिन साधक होगा, तो उसकी सृजन-शक्ति मंद नहीं पड़ेगी तथा उसके साहित्य को अल्प समय में ही आउट आफ डेट कहने का साहस किसी को न होगा।

———

साहित्यिक संकलन का महत्व

छायावादी युग की समाप्ति के बाद से हिंदी साहित्य में जहाँ एक ओर अनेक नये वादों ने जन्म लिया, वहाँ, दूसरी ओर साहित्यिक मानदंड के संबंध में काफी भ्रांतियाँ भी उत्पन्न हुईं। प्रगतिवाद का जन्म हुआ और इस नई धारा के प्रमुख साहित्यकार—कवि, कथाकार, तथा आलोचक आदि—आगे आये। इसके कुछ ही समय बाद यदि एक दूसरे वाद—प्रयोगवाद—का जन्म हो गया, तो साथ ही साथ प्रगतिवादी कैंप में पारस्परिक मतभेद भी बहुत बढ़ गये। और, इस स्थिति के बाद, दस-पंद्रह वर्ष में ही, अर्थात् आज, कुछ ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि प्रत्येक साहित्यकार अपना एक अलग ग्रुप बनाये हुये है, या बनाना चाहता है। आज ऐसे जो अनेक ग्रुप बने हुये हैं, वे साहित्यिक निर्माण में कितना योग देते हैं, यह बात दूसरी है, किंतु इतना निश्चित है कि उनकी अधिकांश प्रतिभा और शक्ति अपने विरोधियों को नीचा दिखाने के प्रयत्नों में ही व्यय हो जाती है। आज जो अनेक मासिक पत्रिकाएँ जन्म ले रही हैं, तथा बहुत से त्रैमासिक, षट्मासिक और वार्षिक साहित्यिक संकलन प्रकाशित हो रहे हैं, वे इन साहित्यकारों की, इस प्रवृत्ति के प्रति जागरूकता का प्रमाण हैं।

हम यहाँ, इस प्रकार के संकलनों के महत्व की चर्चा कर रहे हैं। हमारे सामने यह प्रश्न है कि ऐसे साहित्यिक संकलनों का स्थायी या अस्थायी महत्व क्या है? क्या एक साहित्यिक संकलन के संपादन से एक कर्मठ साहित्यकार के कर्तव्यों की इतिश्री हो जाती है? क्या वह वास्तव में अपने विरोधियों पर, अपने इस प्रयत्न द्वारा, अपना आतंक फैलाने में

सफल हो जाता है ? उसके इन प्रयत्नों का एक स्थायी साहित्य के निर्माण में क्या योग होता है ? हमारा विचार है कि आज हिंदी साहित्य के क्षेत्र में जो अनेक भ्रांतियाँ फैली हुई हैं, उनके निराकरण के लिये, शायद ऐसे संकलन कोई प्रयत्न नहीं करते, बल्कि, बहुत सीमा तक उनकी वृद्धि में ही सहायक होते हैं। यह कहते ही हमारे सामने एक दूसरा प्रश्न आ जाता है। वह यह, कि यदि वास्तविकता ऐसी ही है, तो क्यों एक साहित्यकार इस दिशा में प्रयत्नशील होता है ? हमारा उत्तर है, एक प्रतिभाशाली साहित्यकार ऐसे किसी काम में हाथ डालना पसंद नहीं करेगा। या तो वह कोई ठोस कदम उठायेगा और या चुप रहेगा। वादगत भ्रांतियों की वृद्धि में वह कोई योग देना उचित नहीं समझेगा। बल्कि, इस विपरीत दिशा में वे ही लोग आगे बढ़ेंगे, जिन्हें अपने सामयिक या अस्थायी यश या प्रशंसा से ही संतुष्टि मिलती है और, जो बहुत मामूली सी प्रशंसा या बढ़ावे से ही यह समझने लग जाते हैं कि वे एक बड़ी प्रतिभा हैं, और अपने साहित्य में कोई महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं।

एक और उद्देश्य इन संकलनों के संपादन-प्रकाशन के पीछे होता है। किन्हीं साहित्यकारों के विशेष विज्ञापन और किन्हीं के विरोध की भावना भी ऐसे प्रयासों में निहित रहती है। आज के युग में, जब हिंदी में बहुत कम लोग जैसे हैं, जो अपनी प्रतिभा का उपयोग साहित्य के स्थायी मानदंडों के निर्माण या साहित्य के सही मूल्यांकन में कर रहे हैं। अन्यथा वास्तविकता तो यह है कि इन वादगत झगड़ों ने उनकी प्रतिभा और शक्ति को कुंठित कर दिया है। वे अपने आपको एक स्थायी साहित्य-निर्माण के प्रयत्न में योग देने में असमर्थ, या उसके अयोग्य पा रहे हैं, और किसी प्रकार इन्हीं प्रयत्नों द्वारा अपने आपको संतोष दे रहे हैं, अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखने की कोशिश कर रहे हैं।

यहाँ, पाठकों के मन में एक बात उठ सकती है। वह यह कि शायद हमारा उद्देश्य यह कहना है कि ऐसे साहित्यिक संकलनों के प्रकाशन का कोई महत्व नहीं है, अतः उनका प्रकाशन नहीं होना चाहिये। लेकिन यह कहना हमारा उद्देश्य कदापि नहीं है। हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि ऐसे प्रयत्नों का लक्ष्य विज्ञापनवाद का पोषण न होकर एक स्वस्थ साहित्य के निर्माण में योग देना होना चाहिये। क्योंकि हम यह जानते हैं कि ऐसे

अनेक प्रयत्नों का होना या किया जाना, किसी भाषा के जीविन होने का प्रमाण है; और हिंदी के लिये यह कुछ हद तक, गर्व या संतोष की बात भी हो सकती है कि वह, कम से कम, चेतनशील तो है—अपने भविष्य के निर्माण के लिये।

और, इन संकलनों के प्रकाशन के विषय में, उनके संपादकों से हमारा मत-वैषम्य भी नहीं है। हम भी यह चाहते हैं कि साहित्य की नई दिशाओं की ओर संकेत करने वाले, उनका सही प्रतिनिधित्व करने वाले संकलनों का प्रकाशन हो, वर्ष भर की चुनी हुई कहानियों एकांकियों, कविताओं, निबंधों आदि के संकलन प्रकाशित हों, हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियों एवं सृजनशील प्रतिभाओं का सही मूल्यांकन किया जाये। हाँ, यह हम नहीं चाहेंगे, कि चार-चार, आठ-आठ साहित्यिक अपना-अपना दल बनाकर, अपने-अपने संकलनों का संपादन-प्रकशन करें, और एक दूसरे की प्रशंसा या विरोध में अपनी प्रतिभा और शक्ति का दुरुपयोग करें।

प्रगति का नया रास्ता

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद, दोनों ही साहित्यिक आंदोलनों की सृजनात्मक संभावनाएँ अब समाप्त हो चुकी हैं। इन साहित्यिक प्रवृत्तियों की समस्त देन हिंदी साहित्य को प्राप्त हो चुकी और अब इन दोनों के पास आगे देने के लिए नई चीज कुछ भी नहीं बची और न ही कुछ नई बात कहने को शेष है। हमारा विचार है कि जो लोग अब भी इन वादों का ढिंढोरा पीटते हैं, वे केवल इतिहास पर जी रहे हैं।

लेकिन हमारे ऊपर के कथन का यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की जो देन हिंदी साहित्य को मिली है, वह महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि हम इन दोनों ही प्रवृत्तियों की साहित्यिक देन की महत्ता से भली-भाँति परिचित हैं। हमारा अनुमान है कि प्रगतिवाद ने हमें काफी कुछ दिया। उसने जो सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि कराई, वह यह कि हमारे साहित्य को यथार्थ की ओर घसीटा, रोमांस और कल्पना की भूमि से हटाकर वास्तविक धरातल पर स्थापित किया। तो इस कार्य की महत्ता से परिचित होकर भी दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि प्रगतिवाद ने भी एक रूढ़ि कायम की है जैसी कि छायावाद ने की थी या जैसी कि एक प्रवृत्ति विशेष अथवा वाद विशेष द्वारा की जाती है। यह रूढ़ि प्रतीकों की थी और अनेक प्रगतिवादी प्रतीक इस रूढ़िवादिता का प्रमाण हैं। और हमारा ख्याल है कि जब किसी विशेष प्रवृत्ति की कविता में रूढ़िवादिता का समावेश हो जाता है, तब उसका तत्कालीन रूप अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पाता और हमें उसमें नए बीजों के प्रस्फुटित होने का आभास मिलने लगता है और नये मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा की संभावनाएँ दिखाई

देने लगती हैं। फिर हमें वह जन-जीवन की नई समस्याओं के उद्घाटन की ओर उन्मुख होती प्रतीत होने लगती है।

दूसरी ओर हम यह भी मानते हैं कि छायावाद की छंदबद्ध कविता की प्रतिक्रियास्वरूप तथा उपर्युक्त प्रगतिवादी रूढ़िवादिता की प्रतिक्रियास्वरूप हिंदी में प्रयोगवाद का जन्म हुआ अथवा प्रयोगशीलता का जन्म हुआ। यहाँ हमने जिन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप प्रयोगवाद का जन्म माना है, और जिन विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर उसका उदय हुआ था, हमारा अनुमान है कि उनकी पूर्ति 'तार सप्तक' के प्रकाशन काल तक—या उसके बाद थोड़े समय में ही हो गई थी, लेकिन हुआ कुछ ऐसा कि इसकी भी कुछ रूढ़ियाँ बनीं और शायद यही कारण है कि दूसरे सप्तक द्वारा प्रथम की स्थापित परम्परा शायद कुछ ही आगे बढ़ सकी।

यहाँ, जहाँ हम एक ओर इस नई कविता की आवश्यकता महसूस करते हैं और चाहते हैं कि उसे प्रोत्साहन मिले, वहाँ दूसरी ओर हम यह भी अवश्य चाहते हैं कि कविता कविता ही रहे। मतलब यह है कि हम यह नहीं चाहते कि प्रत्येक प्रकार की कविता को कविता की संज्ञा दी जाए। आज कविता के नाम पर जो समूचे गद्य खंड लिखे जाते हैं, उन्हें और साथ ही भ्रष्ट से भ्रष्ट गद्य को कविता कहना कहाँ का न्याय है? हमारा अनुमान है कि नई कविता के रूप गठन से संबंधित जो समस्याएँ आज हमारे सामने हैं, उनमें प्रमुख यह है कि कविता तथा गद्य की सीमा-रेखा कहाँ है, क्योंकि आज की कविता और गद्य के पारस्परिक अन्तर को समझने में हिंदी का औसत पाठक अपने आपको सर्वथा असमर्थ पाता है। हिंदी में नई कविता के नाम पर आज जो रचनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं, उन्हें यदि बिना तोड़े, अर्थात् सीधे पैराग्राफ के रूप में लिख दिया जाए तो उनमें और साधारण गद्य में सामान्यतः कोई भी स्पष्ट अन्तर नहीं दिखाई देता। हम समझते हैं कि कविता की किसी भी परिभाषा के अनुसार यह कविता नहीं कही जा सकती। हमें खेद है कि स्थानाभाव के कारण यहाँ ऐसी कुछ कविताएँ उदाहरण स्वरूप नहीं प्रस्तुत कर पा रहे हैं और इसलिए भी कि हमारा विश्वास है कि प्रत्येक हिंदी पाठक की नजर के सामने से ऐसी सैकड़ों कविताएँ अवश्य गुजरी होंगी।

एक और दोष वर्तमान हिंदी कविता में दिखाई देता है। और वह है

नवीनता के नाम पर चौंकाने वाली प्रवृत्ति की कवियों में मौजूदगी। सामान्यतयः ऐसा सिर्फ दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही किया जाता है। इसके साथ ही कुछ और कमियाँ भी वर्तमान हिंदी कविता में हैं। नए कवियों की अप्रौढ़ता और अनुशासनहीनता के कारण इधर कविताओं में भद्दे एक्सप्रेशन देखने में आ रहे हैं। और आज का कवि प्रयोगवाद (अथवा नवीनता) के नाम पर कुछ ऐसी बहकी-बहकी बातें करने की कोशिश करता है कि यही समझ में नहीं आता कि आखिर वह कहना क्या चाहता है। हम यदि आज की प्रतिनिधि कही जानेवाली कविताओं पर एक दृष्टि डालें, तो हमें ज्ञात होगा कि इनसे किसी प्रकार का मार्ग-दर्शन नहीं होता और साथ ही वे हमें इस बात का आभास भी देती हैं कि उनके रचयिताओं के मन में एक प्रकार का कुहासा सा भरा है। इसीलिए हमें इस प्रकार की कविता द्वारा प्रस्तुत किए गए जीवन-दर्शन तथा उसके महत्व और उपयोगिता में संदेह होता है। हमें ऐसा जान पड़ता है कि इस प्रयत्न द्वारा जिस दर्शन की संभावनाएँ दिखलाने की कोशिश की जा रही है, वह यथार्थ में, अपने मूल में, दर्शन नहीं है, दर्शन का मुलम्मा है और इस दर्शन का पोषण करनेवाली कविता के उदाहरण स्वरूप हमारे सामने घोर उलझाव से भरी हुई, क्लिष्ट, अर्थहीन कविता सामने आ रही है। आज हिंदी में कुछ ऐसी ही स्थिति है।

तब फिर कौन-सा नया मार्ग है?

हम यदि ईमानदारी से कहना चाहें, तो हम कहेंगे कि वर्तमान हिंदी साहित्य (विशेष रूप से कविता) में जो स्थिति उत्पन्न हो गई है, उससे हम निराश नहीं हैं। और इसके साथ ही, अनेक समताओं-विषमताओं के बावजूद भी हमारे सामने अपने कर्त्तव्यों का नक्शा काफी साफ है। और हम अपने आपको उनके प्रति सचेष्ट और जागरूक भी पा रहे हैं; उससे भयभीत होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं हो गए हैं और न ही किन्हीं भ्रामक सिद्धांतों के प्रचार में जुटे हैं। और हम यह भी समझते हैं कि इस परिस्थिति में एक चिंतनशील और जागरूक आलोचक का यह कर्त्तव्य है कि वह सभी प्रकार के पूर्वग्रहों को त्याग कर, किसी भी प्रकार की कुंठा से आक्रांत न रहते हुए तथा नवीन तथ्यों को आत्मसात करते हुये, समसामयिक साहित्य का किंचित ऊँचे मान और अपेक्षाकृत परिष्कृत दृष्टि से, सही मूल्यांकन करे

और उन साहित्यकारों को, जो साहित्य सृजन में लगे हैं, स्वस्थ साहित्य रचना की दिशा में प्रेरित करे, जिसमें उन कतिपय मानव-मूल्यों का समावेश हो, जो किन्हीं श्रेष्ठ कृतियों की महानता की कसौटी होते हैं।

हम जब वर्तमान स्थिति पर गौर करते हैं, तब हमारे सामने स्वभावतया ही यह समस्या बड़े गंभीर रूप में आती है और हमें कुछ सोचने को विवश करती है कि अब किस रास्ते से हमारा साहित्य आगे बढ़ेगा, किस दिशा को ग्रहण करेगा। हम आज यह अनुभव कर रहे हैं कि हमें अब तक—किन्हीं भी वादों से—जो विभूतियाँ मिली हैं, जो अनुभव मिले हैं, जो महत्वपूर्ण देनें मिली हैं—उन्हें समेटें, उनका संयोजन करें। और इसके साथ ही उसमें जो कुछ कूड़ा-करकट है, उसे छोड़ दें। ऐसा करके एक मानववादी आधार पर साहित्य को आगे बढ़ाया जाय, जिसमें एक ओर प्रगतिवाद की सामाजिकता हो, उसका यथार्थ दर्शन हो, उसकी सामाजिक दायित्व की भावना हो, जन-समस्याओं के विश्लेषण का ऐतिहासिक दृष्टिकोण हो और दूसरी ओर प्रयोगशीलता ने हमें जो उपमान, प्रतीक, रूप-विधान, छन्द, तथा अभिव्यंजना का व्यापक 'कैनवेस' दिया है, उसे भी हम अंगीकार करें। इस प्रकार हम श्रेष्ठ साहित्य-सृजन में समर्थ हो सकेंगे।

विश्व-उपन्यास साहित्य : एक महत्वपूर्ण कथानक

: १ :

विश्व के महान उपन्यासकारों—टाल्सटाय, गुस्ताव फ्लोबर, तथा सामरसेट माम—लिखित क्रमशः "एन्ना केरेनिना", "मदाम बावेरी" और "पेंटेड वेल" नामक उपन्यास विश्व-साहित्य की स्थायी निधि हैं। ये तीनों उपन्यास यद्यपि कई दृष्टियों से एक दूसरे से काफी भिन्न हैं, लेकिन इसके बावजूद भी अपने में कुछ समानता रखते हैं। और वह यह कि इन तीनों उपन्यास के कथानकों में जो समस्या अथवा जो समस्याएँ उठाई गई हैं, वे अपने मूल में एक हैं। और इस प्रकार हमें एक ही समस्या पर इन तीन अमर उपन्यासकारों के दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। तीनों ने ही अपनी जिस सूझ-बूझ, प्रतिभा, कला, बुद्धि-वैभव तथा शक्ति का उपयोग करते हुये अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है, वह आश्चर्यजनक रूप से महत्वपूर्ण है।

कथानक में समानता के अतिरिक्त, हमारी समझ में दो और समानताएँ इन तीनों उपन्यासों में हैं। एक तो यह कि इन तीनों उपन्यासों के नायकों के चरित्र परस्पर समान हैं, और दूसरे यह कि नायिकाओं के बारे में भी कुछ ऐसी ही बात है। यदि एक ओर व्रांस्की, रोडोल्फ और चार्ल्स—तीनों प्रेमी लंपट, स्वार्थी और चाटुकार हैं तो दूसरी ओर तीनों प्रेमिकायें—एन्ना, एम्मा और किटी समान रूप से उदार-हृदया, प्रेमी के लिये सर्वस्व त्याग देने वाली और कल्पना-प्रिय हैं। और तीनों को ही अपने प्रेमियों की स्वार्थ-परता का पता तब लगता है, जब उनका सर्वस्व जा चुकता है। और अंत

में, तीनों को ही अपने तमाम कष्टों से छुटकारे का एक ही मार्ग दिखाई देता है। तीनों संसार से विरक्त हो जाती हैं—एन्ना और एम्मा आत्महत्या कर लेती हैं और किटी का जीवन सूना हो जाता है।

: ७ :

टाल्सटाय संसार के महानतम उपन्यासकार हैं और "एन्ना केरेनिना" विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में गिना जाता है। इसकी प्रमुख पात्री एन्ना असाधारण सुंदरी है। उसका पति अत्यंत उच्च घराने का एक सहृदय व्यक्ति है, जिससे उसे एक पुत्र भी है। उपन्यास में पहली बार जब हमें एन्ना का परिचय मिलता है तब वह अपने भाई और भाभी में समझौता कराने आई होती है। स्टेशन पर ही पहली बार उसे व्रांस्की मिलता है। एन्ना की उससे यह प्रथम भेंट कोई महत्व नहीं रखती, यद्यपि उसकी दानशीलता—उसी स्टेशन पर, उसी ट्रेन से कट कर मर जाने वाले व्यक्ति के लिये दो सौ रूबल देना—उसे कुछ सीमा तक, अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। धीरे-धीरे दोनों का पारस्परिक आकर्षण बढ़ता जाता है और यह यहाँ तक बढ़ता है कि एन्ना के वापस लौटने पर व्रांस्की भी उसी ट्रेन से चल पड़ता है। एन्ना एक महान नारी है। वह उसके प्रति स्वयं भी आकर्षित होने के बावजूद, उसे समझाती है कि जो कुछ वह कर रहा है, वह अनुचित है। वह उसे तुरंत वापस लौट जाने की सलाह देती है। लेकिन वह ऐसा नहीं करता। मास्को आने पर वह उसके निकटतर आता रहता है और एक दिन घबराहटपूर्ण आनंद-स्वप्न की कल्पना में वह उसे आत्म-समर्पण कर देती है। अब संसार में उसके लिये व्रांस्की का प्रेम ही एकमात्र सहारा बच जाता है। दोनों सभी सामाजिक, सामाजिक मर्यादायें तोड़ देते हैं। ....और अंत में एक दिन वह व्रांस्की को सूचना देती है कि उसे गर्भ है, जिसे सुनते ही व्रांस्की का चेहरा फक पड़ जाता है। अब इन प्रेमियों के सामने एक नई समस्या आती है। वही नारी, जो एक दिन अपने भाई और उसकी पत्नी के बीच में समझौता कराने गई थी—जो एक दूसरे को तलाक देने की सोच रहे थे—आज स्वयं तलाक पर, अपने पति को तलाक देने के विषय पर सोचने को बाध्य होती है। कैसी विडंबना है!

व्रांस्की, ऐसी परिस्थिति में, एन्ना को भाग चलने की सलाह देता है। इस प्रस्ताव को सुनकर वह हिचकिचाती है। उसका पति भी तलाक के

विषय में सोचने लगता है—कुछ विशेष शर्तों पर। वह अपने पुत्र को एन्ना को नहीं देना चाहता, जिसे एन्ना प्राणों से बढ़कर चाहती है। उसका पति उसे समझाता है, और व्रांस्की से न मिलने की—कम से कम अपने घर में —हिदायत करता है। पति-पत्नी के पारस्परिक संबंध बिगड़ते जाते हैं। एन्ना अब अधिक घबड़ाने लगती है और उसे भय होने लगता है कि वह मर जायेगी—प्रसव के समय। लेकिन प्रसव-काल सकुशल बीत जाता है और वह एक पुत्री को जन्म देती है। किंतु साथ ही वह रोग-ग्रस्त भी हो जाती है और बहुधा प्रलाप भी करने लगती है।

कुछ समय बाद वह व्रांस्की के साथ एक गाँव में चली जाती है और वे दोनों वहाँ पति-पत्नी के समान रहने लगते हैं। अभी तक एन्ना का अपने पति से तलाक नहीं होता और एक अजीब सी स्थिति में उसके दिन बीतते हैं। लेकिन उस पर से दुर्भाग्य की छाया अभी भी नहीं हटती—व्रांस्की उसकी ओर से खिंचने लगता है। एन्ना को बहुत दुख होता है। अपने किये पर उसे घोर पश्चाताप होता है और वह हर बात के लिये व्रांस्की को ही उत्तरदायी और दोषी समझती है। उनके संबंध आपस में बिगड़ते जाते हैं। एन्ना के हृदय में हर समय अंतर्द्वंद्व चलता रहता है—भीषण। और अंत में, इस विषय परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिये उसका कोमल हृदय एक कठोर निश्चय कर लेता है।

अब एन्ना को विश्वास हो जाता है कि व्रांस्की का उसके प्रति आकर्षण प्रेम का नहीं था, गर्व का था, और अब वह समाप्त हो गया है। अब व्रांस्की उससे ऊब गया है। वह निराश हो जाती है। उसे अपने संबंध पूर्ववत् बनने की अब कोई संभावना नहीं दिखाई देती। उसे सब कुछ असंभव मालूम होता है। अब सिर्फ एक ही रास्ता उसे दिखाई देता है—आत्महत्या। और वह इस कठोर निश्चय की पूर्ति के लिये स्टेशन पहुँच कर गाड़ी पर बैठ जाती है। उसे प्रत्येक व्यक्ति अपनी हँसी उड़ाता जान पड़ता है। खीझकर वह अगले स्टेशन पर गाड़ी से उतर पड़ती है।........सहसा उसे उस दुर्घटना का स्मरण हो आता है, जो व्रांस्की से उसकी प्रथम भेंट के अवसर पर, ट्रेन से एक व्यक्ति के कट जाने से हुई थी। वह काँप उठती है और झपटकर प्लेटफार्म से नीचे उतर आती है। वह गाड़ी के धीरे-धीरे घूमते हुये पहियों को देखती है और दृढ़ता से आगे

बढ़ती है। भगवान से मन ही मन अपने पापों की क्षमा माँगते हुये वह अपने आपको एक घूमते हुये पहिये के सामने फेंक देती है।

: ३ :

गुस्ताव फ्लोबर कृत "मदाम बावेरी" की मुख्य पात्री है एम्मा। वह एक कल्पनाप्रिय, भावुक और सुन्दरी युवती है। अपने पिता के पैर का फ्रैक्चर ठीक करने लिये आने वाले डाक्टर शार्ल्स के प्रति वह आकर्षित हो जाती है, और धीरे-धीरे यह आकर्षण प्रेम का रूप ले लेता है। पहले तो शार्ल्स कुछ भयपूर्वक इस परिस्थिति में अपने आपको पड़ा रहने देता है, लेकिन जब उसकी पत्नी की मृत्यु हो जाती है तब वह साहस से आगे बढ़ता है। वह संकेत से उसके पिता के सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है, जिसे वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है। दोनों शीघ्र ही विवाह के बंधन में बँध जाते हैं।

एम्मा एक नए जीवन में प्रवेश करती है—जिसकी मादक कल्पना में वह न जाने कब से खोई हुई थी। विवाह के पूर्व वह भली भाँति यह अनुभव करती थी कि वह किसी से—शार्ल्स से—प्रेम करती है। किंतु विवाह के बाद उसके कोमल हृदय पर आघात-सा लगता है। उसे वह सुख नहीं मिलता, जिसकी आशा में वह हृदय-द्वार खोले इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थी। वह अपनी इस भारी भूल को अब पग-पग पर महसूस करती है। वह नहीं जान पाती कि आनंद क्या है। अपने देहाती पति के चुंबनों पर वह बहुधा चीख पड़ती। पति की साधारण, रसहीन बातों में उसे कोई रुचि नहीं होती। अक्सर उसकी भद्दी, बेहूदा हरकतों पर वह खीझ उठती और उसकी मूर्खता पर आश्चर्य करने लगती।

एक दिन नृत्य घर में वह एक अन्य व्यक्ति के साथ नृत्य करती है और उसके प्रति कुछ आकर्षण का भी अनुभव करती है, लेकिन वह क्षणिक आकर्षण उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं लाता। उसका पारिवारिक जीवन दुखमय हो जाता है। उसे अपने पति से घृणा होने लगती है। उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है और वह अव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने के कारण रोगिणी हो जाती है। और जब वह अपने पति के साथ स्वास्थ्य-सुधार के लिए वायु-परिवर्तन को जाती है, तो गर्भवती होती है।

इस प्रवास काल में ही एक दिन वह एक पुत्री को जन्म देती है। कुछ समय बाद उसके जीवन में एक क्लर्क—लियो—प्रवेश करता है, अपने मन में अनेक मधुर कल्पनाएँ लिये हुये। वह एम्मा से घनिष्टता बढ़ाना प्रारंभ कर देता है—लेकिन एम्मा की ओर से उसे कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता, यद्यपि वह अप्रत्यक्ष रूप से लियो की ओर आकर्षित हो चुकती है। क्योंकि जब वह उसके पास से निराश होकर लौटता था, तब वह खिड़की में से उसे जाते हुये देर तक देखती रहती थी। दूसरी ओर, लियो उसकी ओर और भी अकर्षित होता जाता है। लेकिन एम्मा अब भी यही सोचती रहती है कि वह लियो को निराश कर चुकी है। वह यह समझती रहती है कि शायद अब इसका अवसर बीत चुका है, वह सब कुछ खो चुकी है। ऐसी ही, अनिश्चय की स्थिति में, लियो को वहाँ से चले जाना पड़ता है और यह प्रेम-व्यापार स्थगित हो जाता है।

अब उसके जीवन में रोडोल्फ प्रवेश करता है। वह अपनी चाटुकारिता से एम्मा के हृदय को जीत लेता है। एम्मा उसकी ओर पूरी तौर से खिंच जाती है, लेकिन वह चालाकी से, धीरे-धीरे कदम बढ़ाता है। रोडोल्फ एम्मा के पति शार्ल्स को, एम्मा के स्वास्थ्य-सुधार के लिए, घुड़सवारी करने की सलाह देता है, जिसे वह प्रसन्नता से स्वीकार कर लेता है और एम्मा उसके साथ नित्य घुड़सवारी को जाने लगती है। रोडोल्फ उसके निकटतर आता रहता है। एक दिन, सूने जंगल में, अवसर पाकर वह बहुत ही मधुर शब्दों में एम्मा से प्रणय-निवेदन करता है, उसे 'मेडोना' और 'सौंदर्य की देवी' संबोधित करता है। वह उसे बताता है कि वह उसकी पूजा करता है। एम्मा एकाएक यह सब सुनकर भयभीत हो जाती है, काँप उठती ह। वह परिस्थिति से लाभ उठाता है और उसकी कमर में हाथ डाल देता है। वह पागल हो उठती है। 'ओह रोडोल्फ' कहकर वह उसके कंधे पर सिर टिका देती है और एक आह भर कर, अश्रुपूर्ण नयनों से उसे अपने आपको समर्पित कर देती है।

दूसरे दिन वे फिर घुड़सवारी को वहीं जंगल में जाते हैं और यह दिन भी वैसा ही मधुर सिद्ध होता है। रोडोल्फ उसे आलिंगन में लेकर उसके गुलाबी गालों पर दर्जनों चुंबन अंकित करता है। उस दिन से वे दोनों एक दूसरे को नित्य पत्र भी लिखते हैं। एक दिन शार्ल्स के चले जाने पर उसे

असमय ही रोडोल्फ से मिलने की तीव्र इच्छा होती है और वह उसके घर चली जाती है। बाद में तो वह बहुधा ऐसा करने लगती है। वह उससे रात को भी मिलना जारी रखती है। रोडोल्फ रात होने पर उसके घर आता और उसे संकेत देने को थोड़ी-सी बालू उसके कमरे के दरवाजे पर फेंक देता। वह फौरन बाहर आती। रोडोल्फ अपने बड़े, ढीले कोट में एम्मा को लपेट लेता और उसकी कमर में हाथ डालकर, उसे बगीचे के दूसरे सिरे पर ले जाता। भयंकर जाड़े में वे एक दूसरे से लिपट जाते। उनके अधर परस्पर मिल जाते, वे सुख-स्वप्नों में खो जाते।

काफी दिन इसी तरह बीत जाते हैं। लेकिन जब प्रेम का नशा कुछ कम होता है, तब एम्मा परिस्थिति की गंभीरता का अनुभव करती है। रोमांस के दिन बीते जान पड़ते हैं और एम्मा अब रोडोल्फ के मुँह से प्यार के वे बोल सुनने को तरस जाती है, जो पहले उसके हृदय को झनझना देते थे और जिन्हें सुनकर वह नशे से पागल हो उठती थी। उनका आचरण अब पति-पत्नी का-सा रह जाता है, प्रेमी-प्रेमिका का-सा नहीं। अब उनके बीच प्रेम नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती है, रह जाती है वासना, वासना की माया। वह भयभीत होने लगती है और एक दिन अतीव घबड़ाहट में, वह अत्यन्त करुण, विनम्र शब्दों में रोडोल्फ से भाग चलने की प्रार्थना करती है, जिसे वह अस्वीकार कर देता है। लेकिन एम्मा अपना प्रयत्न जारी रखती है और बाहर जाने के लिए आवश्यक सामान तथा फैशन की अन्य वस्तुयें उधार लेती रहती है। दूसरी ओर उसका पारिवारिक जीवन कष्टमय होता जाता है। वह बात-बात पर पति को झिड़क देती है और सास से लड़ पड़ती है। और एक दिन, वही रोडोल्फ, जिसके सहारे की आशा पर, वह यह सब कर रही होती है, उसकी सारी मधुर कल्पनाओं को झकझोर कर, उसे छोड़कर कहीं चला जाता है, एम्मा के कोमल, भावुक-हृदय पर तीक्ष्ण आघात होता है। उसे कर्ज की भी चिंता होती है। और वह फिर बीमार पड़ जाती है।

अब लियो फिर वापस आता है। उसके प्रति एम्मा की पूर्व सुप्त भावनाएँ जाग उठती हैं। लियो की भी तीन वर्ष पहले की इच्छायें तीव्र हो उठती हैं। लियो फिर अपना प्रेम प्रकट करता है और एम्मा उसे फिर समझाती है कि उन दोनों के प्रेम की संभावना अब समाप्त हो चुकी है। लेकिन लियो इस बार निराश नहीं होता और उसे सफलता भी मिलती है।

एम्मा उसके साथ कई दिन 'रूएन' में बिताती है, एक प्रकार से वास्तविक सुहागरात ही मनाती है। वे प्रेमालाप करते हैं, नाव पर दूर द्वीप की सैर करते हैं, हरी घास पर लेटते हैं, झाड़ी के पीछे एक दूसरे का चुम्बन लेते हैं। वह अपने पति से अपने अवैध प्रेम को छिपाने के लिये झूठ भी बोलती है। वे विलासी जीवन बिताते रहते हैं, उसमें पूरी तौर से डूबे रहते हैं।

एम्मा को जब उसके महाजन अदालत में जाने की धमकी देते हैं, तब उसका नशा टूटता है। अपने सम्मान की रक्षा तथा घर को कुड़की से बचाने के लिए वह लियो के पास जाती है, किंतु वह रुपये का प्रबंध करने में असफल रहता है। वह कुछ निराश होती है और अमीन के पास जाती है। अमीन उसकी मुसीबत से अनुचित लाभ उठाना चाहता है और उसकी कमर में हाथ डालकर प्रेम प्रकट करता है। क्रोध से तमतमाते हुये उसे झिड़क कर वह रोडोल्फ के पास जाती है (जो अब तक वापस आ चुका होता है) और उससे तीन हजार फ्रांक उधार माँगती है। वह धूर्ततापूर्वक, बेशर्मी से अपनी असमर्थता प्रकट कर देता है। अंत में, सब तरफ से निराश होकर वह एन्ना का ही मार्ग अपनाती है—विष खाकर आत्महत्या कर लेती है। वह पति को एक पत्र देती है और उससे प्रार्थना करती है कि वह उसे अगले दिन पढ़े। वह उससे बार-बार पानी माँगती है, उसे और ज्यादा प्यास लगती है—तेज प्यास लगती है—तेज प्यास। उसका दम घुटने लगता है। दवा का असर साफ दिखने लगता है। उसका पति घबड़ाता है, रोता है, शहर भर के सब बड़े डाक्टरों को बुलाता है। आखिरी वक्त में वह अपनी पुत्री को देखने को बुलाती है। फौरन ही उसकी हालत बिगड़ जाती है और सब कुछ समाप्त हो जाता है।

: ४ :

सामरसेट माम द्वारा लिखित "पेंटेड वेल" की नायिका है किटी, उसका पति शाल्र्स डाक्टर है, लेकिन वह एक अन्य पुरुष चार्ल्स से प्रेम करती है। चार्ल्स विवाहित भी है और अपनी पत्नी डोरोथी से प्रेम और उसके प्रति ईमानदारी का दावा भी करता है। लेकिन दूसरी ओर किटी अपने पति से असंतुष्ट है, ठीक उसी तरह जैसे एम्मा अपने पति से थी। एम्मा की ही तरह वह भी यह अनुभव करती है कि उसने वाल्टर से विवाह करके एक बड़ी भूल की। उसे वाल्टर में कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता। वह चार्ल्स की

ओर पहली ही भेंट में आकर्षित हो जाती है। उसका यह आकर्षण और भी बढ़ जाता है, जब उसे उसके संबंध में कुछ अन्य बातें मालूम होती हैं— कि वह ब्रिज का अच्छा खिलाड़ी है, कि वह अब असिस्टेंट औपनिवेशिक सेक्रेटरी के पद से तरक्की करके सेक्रेटरी बननेवाला है, कि वह टेनिस, पोलो और गोल्फ खेलता है और उसने रेस के घोड़े भी पाले हैं आदि।

चार्ल्स भी चाटुकारिता में व्रांस्की या रोडोल्फ जैसा ही है। वह किटी को बताता है कि पहली ही मुलाकात में वह उसके लिये पागल हो उठा था, और कि किटी के समान सुंदरी स्त्री उसने कभी नहीं देखी थी। वह किटी की उपमा कमलिनी से देता है। जब वह किटी के जीवन में प्रवेश करता है, तब किटी को भी—एन्ना और एम्मा की ही तरह—अपना पारिवारिक जीवन कष्टमय मालूम होने लगता है, उसके भी पति से संबंध बिगड़ने लगते हैं, उसे पति की हर बात भोंडेपन से भरी हुई जान पड़ने लगती है। और दूसरी ओर प्रेमी चार्ल्स सर्वगुण संपन्न मालूम होता है। वह अक्सर यह सोचती है कि अगर वह वाल्टर की पत्नी न होकर चार्ल्स की पत्नी होती तो………………। किटी को बहुधा यह भय होता है कि अब, जब अपने पति से उसके संबंध, चार्ल्स को लेकर कटुतर हो गये हैं, कहीं चार्ल्स उसे धोखा न दे और जहाँ वह एक ओर अपने पति से तलाक लेने के प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करके इसी निश्चय पर आई है कि तलाक लेना ही उसके लिये हितकर है, कहीं चार्ल्स बेवफाई न करे। लेकिन चार्ल्स की बातें इतनी आश्वासनपूर्ण होती हैं कि उसे अपना यह संदेह उपहासास्पद मालूम होने लगता है। चार्ल्स उसे भयभीत देखकर समझाता है कि पागल, फिक्र मत करो, यकीन रखो, भय की कोई बात नहीं है। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

जैसे-जैसे किटी अपने पति के प्रति अधिक विश्वासघातिनी होती जाती है, वह उससे अधिक भय भी खाने लगती है। उसकी शक्ल देखते ही किटी का चेहरा पीला पड़ जाता है, उसकी एक-एक हरकत उसके हृदय में धड़कन पैदा कर देती है। प्रत्येक बार उसके अधर हिलते ही वह समझती है कि अब शायद वह चार्ल्स के संबंध में ही कुछ कहेगा। लेकिन वह ऐसा कुछ नहीं करता। बल्कि एक दिन वह किटी को बताता है कि वह अपनी बदली करा

के "मी तान फू" जा रहा है, जहाँ भयंकर रूप से कालरा फैला हुआ है। पहले तो वह यह समझती है कि शायद वहाँ जाकर वह जान बूझ कर मरना चाहता है और वह जरा सोच में पड़ जाती है, लेकिन जब वह उससे भी वहाँ चलने का आग्रह करता है, तब वह काँप उठती है, पीली पड़ जाती है। वह वहाँ जाने मे साफ इनकार कर देती है। वाल्टर भी उसे साफ बता देना है कि अगर वह नहीं जायेगी तो वह भी वहाँ जाने का इरादा बदल देगा।

अब तक किटी को इस बात का आभास नहीं मिलता कि वाल्टर किटी के गुप्त रहस्यों को जानता है, लेकिन अब वह पहली बार किटी से कहता है कि वह शायद उसे इतना अधिक मूर्ख समझती है, जितना वह नहीं है। वह दृढ़ स्वर में किटी को बता देता है कि वह सब कुछ सिद्ध कर सकता है। किटी भी आवेश में आकर उसे यह धमकी देती है कि चार्ल्स उससे कभी भी विवाह कर सकता है। लेकिन वाल्टर यह सुनकर उपहास भरे स्वर में उससे पूछता है कि क्या कभी चार्ल्स ने उसे इस प्रकार का कोई आश्वासन दिया है। अब किटी कुछ भयभीत होती है। उसी भय के आवेग में वह चार्ल्स के पास जाती है और उसे सारी बातें बता देती है। चार्ल्स उससे विवाह करना अस्वीकार कर देता है। यही नहीं, वह उसे अपने पति के साथ "मी तान फू" जाने की सलाह भी देता है। अब किटी को ज्ञात होता है कि उसके साथ धोखा हुआ। लेकिन अब उसे कोई रास्ता नहीं दिखाई देता और वह अपने पति के साथ वहाँ चले जाना ही पसंद करती है।

"मी तान फू" में किटी काफी दिन रहती है। उसे अपने गर्भवती होने का भी पता वहीं लगता है। वाल्टर को वहाँ बहुत व्यस्त रहना पड़ता है। किटी भी कुछ सेवा-कार्य करती है। दुर्भाग्यवश वाल्टर एक दिन वहाँ उसी घातक बीमारी का शिकार हो जाता है। किटी का सर्वस्व लुट जाता है। दुःखिनी किटी वापस अपने शहर में आ जाती है। चार्ल्स की पत्नी के अनुरोध से वह उसके यहाँ कुछ दिन ठहरती है। चार्ल्स कई दिन मौका देखने के बाद एक दिन एकांत पाकर उसके साथ बलात्कार करता है। किटी उसे धिक्कारती है और वहाँ से चलकर अपने पिता के पास जाकर रहने लगती है। एक अजीब सी, सूनेपन की स्थित में उसका जीवन बीतने लगता है—निराशा, खेद, पश्चाताप और दुख से भरा हुआ।

: ५ :

एन्ना व्रांस्की से प्रेम करती है, एम्मा रोडोल्फ से तथा किटी चार्ल्स से। एन्ना, एम्मा एवं किटी—तीनों विवाहिता हैं, दूसरी ओर व्रांस्की, रोडाल्फ और लियो अविवाहित हैं तथा चार्ल्स विवाहित। एन्ना व्रांस्की की ओर आकर्षित है, लेकिन इसके बावजूद, वह सामाजिक मर्यादा और पति की प्रतिष्ठा का ध्यान रखती है। वह स्वयं तो कोई इनकी इनीशियेटिव लेती ही नहीं, बल्कि जब व्रांस्की आगे बढ़ता है, तब भी वह पहले उसे समझाने की चेष्टा करती है और जब उसे अपने हठ पर बराबर अड़ा देखती है, तभी उसकी ओर झुकती है। साथ ही वह मातृत्व के प्रति भी ईमानदार है। अपने पति के प्रति विश्वासी न होने पर भी वह एम्मा और किटी की तरह उसकी हरकतों का भोंडा नहीं समझती। उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए भी वह प्रयत्नशील रहती है। वह अनेक कष्ट सहते हुये भी जीवित रहती है—अपने प्रेमी के लिये। लेकिन जब वही उससे ऊबसे लगता है, तब उसके सामने आत्महत्या के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जाता।

व्रांस्की एन्ना से प्रेम करता है। प्रारंभ में वह हमें एक सच्चे प्रेमी के रूप में ही दिखाई दता है, क्योंकि वह एक अत्यंत सुन्दरी युवती से विवाह लगभग निश्चित निश्चित सा ही हो जाने पर भी, पागलों की तरह, सब कुछ छोड़कर, एन्ना के पीछे चल पड़ता है, जो आठ वर्ष के एक बच्चे की माँ भी है। उसके समझाने पर भी वह अपने निश्चय से नहीं हटता। वह ईमानदारी से एन्ना को पति से तलाक लेने की राय देता है और स्वयं भी इसके लिए प्रयत्नशील रहता है। काफी झंझटों के बाद शायद वह परेशान होकर ही एम्ना की ओर से खिंचता है और राजनैतिक कार्यों में अपने को भुलाये रहने की चेष्टा करता है। लेकिन एन्ना का मासूम दिल इस आघात को नहीं सहन कर पाता, और वह आत्महत्या करती है, जिसका उत्तरदायित्व व्रांस्की पर ही है।

एम्मा पहले शार्ल्स से प्रेम करती है और विवाह भी। लेकिन कुछ समय बाद उसे यह महसूस होता है कि शायद उसका यह आकर्षण प्रेम का न होकर नादानी का था। और शार्ल्स के प्रति उसकी समस्त भावनायें एकदम बदल जाती हैं। बाद में रोडोल्फ के उसके निकट आने पर, उसकी

कल्पनायें फिर से ताजी हो उठती हैं और वह सुख-स्वप्नों में खो जाती है। लेकिन जब वह उसे धोखा देता है अब उस पर फिर एक आघात लगता है। ऐसे समय में लियो के फिर आने पर उसका जीवन फिर एक नई दिशा की ओर मुड़ता है। और वह विलास में लीन हो जाती है। बाद में उसे अपने पापों के लिए पश्चाताप भी होता है, साथ ही महाजनों की धमकी से भय भी। और यही उसकी आत्महत्या का कारण होता है।

रोडोल्फ को एम्मा का प्रेमी नहीं कहना चाहिए। वह केवल स्वार्थवश उसकी चापलूसी करता है। उसमें व्रांस्की, लियो या चार्ल्स जैसा कोई भी गुण ही नहीं है, जो उसके पक्ष को जरा भी सबल बना सके। अपना स्वार्थ पूरा होने के साथ ही जब उसे एम्मा के वास्तविक प्रेम का बोध होता है, तब वह उससे छुटकारा पाना चाहता है और भाग खड़ा होता है। बाद में एम्मा के उससे रुपया माँगने पर वह उसे पतित समझने लगता है और इनकार कर देता है—यद्यपि एम्मा के कर्ज लेने का मूल कारण वही था। उसकी अपेक्षा लियो चरित्र अच्छा है। कम से कम, वह एम्मा से प्रेम तो करता ही है। उसका अपराध यह है कि वह कर्ज के रुपये का प्रबंध करने के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करता और कि वह अन्त में उससे ऊबने भी लगता है।

किटी, पाठकों की सहानुभूति, एन्ना और एम्मा से अधिक प्राप्त करती है। वह बेचारी शुरू से आखीर तक एक अबला नारी ही के रूप में सामने आती है। वह बिना सोचे समझे वाल्टर से विवाह कर लेती है—किन्हीं विवशताओं के कारण। चार्ल्स की बातों में आकर वह सहज भाव से उससे प्रेम करने लगती है। लेकिन जब वाल्टर के कहने से उसे आजमाती है, तब उसकी आँख खुलती हैं। इस आघात को सहन करने में अपने आपको असमर्थ पाकर वह 'मी तान फू' चली जाती है—मरने के लिये। लेकिन होता इसका उल्टा है—उसका पति वहाँ बीमारी का शिकार हो जाता है। वह विधवा होकर लौटती है। फिर चार्ल्स का उसके गर्भवती होने पर भी बलात्कार, उसके हृदय को और भी झकझोर देता है। वह वहाँ से सब कुछ छोड़कर, विरक्त होकर, चली जाती है।

चार्ल्स धोखेबाज और स्वार्थी है। धूर्तता में वह रोडोल्फ के समान ही

है, फर्क यह है कि—रोडोल्फ से भी आगे बढ़कर—वह विवाहित होकर भी, दो नारियों को धोखा देता है—अपनी प्रेमिका किटी और पत्नी डोरोथी को। वह दोनों से ही प्रेम का ढोंग करता है। अपने स्वार्थवश वह किसी को भी छोड़ना नहीं चाहता। और जब किटी उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखती है तब वह परिस्थिति से बचने के लिए उसे 'मी तान फू' चले जाने की राय देता है, वहाँ लौटने पर वह उस विधवा, गर्भवती के साथ बलात्कार करता है और अपनी पाशविक वृत्ति की तुष्टि करता है। उसका यह अपराध उसके चरित्र को और भी कलंकित कर देता है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त एक और समानता इन उपन्यासों में मिलती है। और वह यह कि इन तीनों मुख्य पात्रियों के पतियों के चरित्र भी लगभग समान ही हैं। तीनों ही विवश हैं, उदार हैं, निष्कपट हैं, अपनी पत्नियों से प्रेम करते हैं और यह नहीं समझ पाते कि उनकी प्रसन्नता और संतोष के लिये वे क्या करें।

———

उपन्यास-कला

(हैनरी जेम्स के विचार)

एक उपन्यास एक उपन्यास है, उसी प्रकार जिस प्रकार एक भोजन एक भोजन है, और हमारा उसके प्रति अधिक-से-अधिक कर्तव्य उसे निगलना है।

कला तर्क पर निर्भर है, प्रयोग पर निर्भर है, उत्सुकता पर निर्भर है, प्रयोगों की विविधता पर निर्भर है, विचारों के आदान-प्रदान पर निर्भर है, तथा आदर्श अथवा सिद्धांतों की तुलना पर निर्भर है। और यह एक कल्पना है कि ऐसे समय—जब किसी व्यक्ति को उसके (कला के) संबंध में कोई विशेष बात न कहनी हो और किसी व्यक्ति के पास उसके प्रयोग का कोई कारण न हो, यद्यपि ऐसे समय सम्मान के हो सकते हैं—विकास के नहीं होते, यदि होते हैं तो सम्भवतः कुछ शुष्कता छोड़कर। किसी कला का सफल प्रयोग एक अच्छा कौतुक है, किंतु सिद्धांत भी रुचिकर होते हैं। वाद-विवाद, सुझाव, सूत्रीकरण—ये सब उपज के कारण हैं, यदि वे सत्य और स्पष्ट हों।

उपन्यास के अस्तित्व का एक मात्र कारण यही है कि वह जीवन का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करता है। जब वह इस प्रयत्न को त्याग देता है, उसी प्रयत्न को जिसे हम चित्रकार के टाट (पटुवे का बना हुआ एक मोटा कपड़ा) पर देखते है, तब वह एक विलक्षण स्थिति पर आ जाता है। (चित्रकार के) चित्र से यह आशा नहीं की जाती, कि वह स्वयं को इतना सामान्य कर देगा कि भुला दिया जाय। और चित्रकार की कला तथा

उपन्यासकार की कला में, जहाँ तक मैं समझता हूँ, पूर्ण समानता है। उन (दोनों) की प्रेरणा समान है, उनकी प्रणाली (विभिन्न प्रकार के द्रव्यों का प्रयोग करने की) समान है, एवं उनकी सफलता भी समान है। वे एक-दूसरे से सीख सकते हैं तथा एक-दूसरे की व्याख्या एवं रक्षा कर सकते हैं। उनके कारण समान हैं तथा एक का सम्मान दूसरे का सम्मान है।

उपन्यास एक प्रकार का इतिहास है। यह केवल एक सामान्य विवरण है, जो इसके साथ न्याय करता है, और जो हम उपन्यास के संबंध में दे सकते हैं। किंतु इतिहास भी जीवन का प्रतिनिधित्व कर सकता है, करने को स्वतंत्र है। उपन्यासकार का काम ज्यादा कठिन इसलिए है कि उसे जीवन में से घटनाओं का चयन करना पड़ता है। उसका कार्य इसलिए अधिक महत्वपूर्ण भी है। कुछ लोग समझते हैं कि उपन्यास की विषय-वस्तु कल्पित होती है; यह गलत है। उपन्यासकार भी सत्य की खोज करता है, और सत्य को प्रकट करता है। कुछ लोग समझते हैं कि कला नैतिकता की विरोधिनी है और मात्र विनोद के लिये है, यह भी अन्ध-विश्वास है। कुछ का विचार है कि उपन्यास में केवल अच्छे पात्रों की सृष्टि होनी चाहिए। कुछ चाहते हैं कि अंत सुखद रहना चाहिए, जैसे भोजन के अंत में मीठी चीज। मुख्य वस्तु यह है कि उपन्यास कलात्मक हो।........

उपन्यासकार से हम एकमात्र माँग यह कर सकते हैं कि उसकी कृति रोचक हो।

........एक उपन्यास, अपनी व्यापक परिभाषा के अनुसार, एक व्यक्तिगत तथा सीधी जीवन की छाप है, जो उसके मूल्य का निर्माण करती तथा उसका महत्व निर्धारित करती है। यह महत्व कम या ज्यादा होगा उस छाप की मात्रा और गुण के अनुसार। किंतु जब तक उपन्यासकार को अनुभव करने और कहने की स्वतंत्रता न होगी तब तक वह ऐसी छाप या प्रभाव उत्पन्न न कर सकेगा। एक उपन्यासकार अपना कार्य धीरे-धीरे आगे बढ़ाता है, अपने ब्रशवाले भाई (चित्रकार) की तरह, जिसके सम्बन्ध में हम हमेशा कहते हैं कि उसने अपना चित्र ऐसे ढंग से रँगा है जो कि (केवल) वह स्वयं ही अच्छी तरह समझ सकता है। उसका ढंग ही उसका रहस्य है, यह ढंग आवश्यक रूप में गुप्त रहस्य नहीं। ऐसा मैं उपन्यासकार तथा

चित्रकार के शैलीगत साम्य का अनुभव करने पर ही कह रहा हूँ। चित्रकार इस योग्य है कि वह अपने अभ्यास के मूल तत्व सिखा सके। अच्छी कृतियों का अध्ययन कुछ हद तक सिखाता है कि किस प्रकार एक चित्र बनाया जाय और किस प्रकार लिखा जाय।

यह कहना व्यर्थ है कि सत्यता के विवेक के अभाव में आप एक अच्छा उपन्यास नहीं लिख सकते, किंतु आपको उस सत्य को अपने जीवन में पाने की कोई विधि बता सकना कठिन है। मानवता विशाल है और सत्य के असंख्य रूप हैं।············ज्यादा से ज्यादा यह कहा जा सकता है कि किसी उपन्यास में यथार्थ की गंध होती है, किसी में नहीं।············यह कहना काफी नहीं कि 'अनुभव से लिखो।' किस प्रकार का अनुभव? उसका प्रारंभ कहाँ होता है, और कहाँ अंत? अनुभव चारों ओर है, कल्पनाशील मस्तिष्क छोटे-से-छोटे संकेत को जीवन-रहस्य का वाहक बना देता है।

किसी देखी हुई वस्तु से बिना देखी हुई वस्तु की कल्पना करना, किसी वस्तु की परीक्षा उसकी चित्राकृति से करना, जीवन का ऐसा सामान्य अनुभव करना कि देखते ही विशेष पकड़ में आ जाए—यही अनुभूति है। यदि अनुभव प्रेक्षण से निर्मित होते हैं, तो यह कहा जा सकता है कि प्रेक्षण ही अनुभव है, किंतु वह तो वह वायु है जिसमें हम श्वास लेते हैं। इसलिए यदि मैं निश्चित रूप से एक नौसिखुए से कहूँ कि 'अनुभव से और केवल अनुभव से लिखो', तो यह काफी नहीं। मुझे यह भी कहना चाहिए कि 'एक ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करो जो अनुभव का उचित उपयोग कर सके।'

इसका यह मतलब नहीं कि मैं शुद्धता, सत्यता और विवरण का महत्व कम कर रहा हूँ। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि सत्यता का वातावरण एक उपन्यास का सबसे बड़ा सद्गुण है—वह गुण जिस पर अन्य सभी गुण निर्भर हैं। यदि वह नहीं है, तो सब कुछ होना व्यर्थ है। यदि वह है तो वह उन प्रभावों का ऋणी है जिनके द्वारा लेखक ने जीवन के भ्रम को खड़ा किया। इस सफलता को पाने की प्रणाली उपन्यासकार की कला का प्रारंभ और अंत है।

····उपन्यास एक सजीव वस्तु है। वह किसी भी अन्य संगठन की भाँति

एकतापूर्ण, गतिमय तथा अनुपातिक होता है, जैसा कि प्राणवान वस्तु में पाया जाता है।

उपन्यास का सत्य जीवन से होड़ लेता है, चित्र से होड़ लेता है।

....सारा जीवन उपन्यासकार का आह्वान करता है; जीवन के क्षुद्रतम अंश का चित्रण भी एक जटिल व्यापार है। इस चित्रण के नियम कोई नहीं बता सकता। बहुत से तथ्य लेकर उपन्यासकार उनमें से कुछ को चुनता है।....पात्रों की स्पष्ट रूप-रेखा होनी चाहिए; इसके लिये लम्बा वर्णन अपेक्षित नहीं। ज्यादा अच्छा साधन वार्त्तालाप है। वर्णन ऐसा होना चाहिए जो कथा को बढ़ाये।

चरित्र-प्रधान और घटना-प्रधान उपन्यास का भेद पुरानी चीज है-- निरर्थक। उपन्यास केवल दो प्रकार के होते हैं अच्छे उपन्यास और बुरे उपन्यास; वे उपन्यास जो सजीव हैं, और वे जो निर्जीव हैं।

समीक्षा के मूल एवं प्राचीन तत्व हैं, पसंद और नापसंद। इसलिये विषय-वस्तु का महत्व है, बहुत महत्व है।....मनुष्य क्या पसंद करेंगे और क्या नहीं, इसका कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। लोग जैसे जीवन का अनुभव करते हैं, वैसे ही जीवन की निकटस्थ कला का। ....कला में चयन होता है, किंतु ऐसा चयन जो जीवन के 'टाइप' को न झुठलाये, उसका समावेश कर ले।

कला का हर संप्रदाय मानेगा कि कला में विषय-वस्तु आवश्यक है। इस अर्थ में कहानी अपेक्षित है। बिना कहानी का उपन्यास वैसा ही है जैसे बिना सुई का धागा।

मेरे विचार से उपन्यास कला का बहुत उत्कृष्ट रूप है।

....क्या आप अपनी शर्तों की परिभाषा नहीं देंगे और इसकी व्याख्या नहीं करेंगे कि एक चित्र किस प्रकार नैतिक या अनैतिक हो सकता है? आप एक नैतिक चित्र या नैतिक मूर्ति का नमूना बनाने की इच्छा रखते हैं; क्या आप हमें बताएँगे कि आप उसे किस प्रकार निर्मित करेंगे? हम उपन्यास-कला पर विचार कर रहे हैं। कला के प्रश्न (व्यापक अर्थ में)

कार्य-पूर्ति के प्रश्न हैं ; नैतिकता के प्रश्न इससे बिलकुल भिन्न हैं। दोनों सरलता से नहीं मिलाए जा सकते।

एक बिंदु है जहाँ किसी कृति की कलात्मक एवं नैतिक विशेषताओं का मिलन होता है ; यह बिंदु है स्रष्टा की अनुभूति और उसकी कृति का सामंजस्य। मतलब यह कि श्रेष्ठ कृतित्व पूरी ईमानदारी चाहता है। अंततः कृति में स्रष्टा का मस्तिष्क प्रतिफलित होता है। साधारण मस्तिष्क से कभी असाधारण कृति नहीं निकल सकती। उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपनी कृति में उसी प्रयोजन को प्रतिफलित करने की कोशिश करे जिसे वह अपने चिंतन एवं रागात्मिका वृत्ति द्वारा पूर्णतया आत्मसात् कर चुका है। उपन्यासकार के लिये मैं केवल एक शर्त रखूँगा—उसे पूर्णतया ईमानदार होना चाहिये। यदि उपन्यास से निष्कर्ष निकालना जरूरी ही हो, तो इसका ध्यान रखा जाए कि उपन्यासकार का ज्ञान बहुत विस्तृत हो। उपन्यासकार का पहला कर्तव्य है—कृति को पूर्ण बनाना, उसे कलात्मक-पूर्णता देना ; निष्कर्ष गौण वस्तु है।

उपन्यास का कथानक

(ई० एम० फार्स्टर के विचार)

अरस्तू का कथन है कि "पात्र हमें गुण देते हैं, किंतु व्यवहार में हम आह्लादित या विक्षुब्ध ही होते रहते हैं।" हम यह निर्णय कर चुके हैं कि अरस्तू भूलता है और अब हमें उस विरोध के परिणाम का साक्षात करना चाहिए। अरस्तू कहता है कि समस्त मानवीय सौख्य तथा पीड़ा उस अदृश्य जीवन में समाविष्ट रहती है, जिसे हम व्यतीत करते हैं, जिसका उपन्यासकार (अपने चित्रणों में) स्पर्श करता है, यह हम जानते भी हैं। अदृश्य जीवन से हमारा आशय उस जीवन से है जिसका बाह्य प्रमाण हमारे पास नहीं रहता। हमारा आशय किसी अश्लील जीवन से नहीं, प्रत्युत उस जीवन से है जिसका व्यक्तीकरण किसी अवसर विशेष या शब्द अथवा आहों से होता है। पर शब्द या आहें उतनी ही प्रामाणिक हैं जितना कि भाषण या हत्या। ये जिस जीवन की अभिव्यक्ति करते हैं वह गोपन से व्यवहार की ओर बढ़ता है। किसी प्रकार अरस्तू को विषम समय नहीं मिला। उसने कुछ उपन्यास पढ़े अवश्य थे, परन्तु आधुनिक नहीं। वह स्वभावतः ही गौणता से विक्षुब्ध सा था और वास्तव में वह मानवी-मस्तिष्क को एक ऐसी परख-नली समझता था जिसमें डालकर उसकी सारी बातों का पर्यवेक्षण हो सके और जब उसने उपर्युक्त शब्द कहे होंगे तब उसके दिमाग में नाटक रहा होगा, जिसके विषय में वे निस्सन्देह ही सच भी हैं। नाटक में प्रत्येक मानवीय सौख्य या पीड़ा कार्य-रूप लेती है और उसे लेना चाहिए भी। अन्यथा वह अज्ञात ही रह जायेगी। बस नाटक तथा उपन्यास में यही अन्तर है।

उपन्यास की विशेषता है कि लेखक अपने पात्रों के विषय में बात कर सकता है उसी प्रकार उनके द्वारा उनकी वार्ता के समय हमारे सुनने का आयोजन भी कर सकता है। वह आत्मश्लाघा को छू सकता है और उस स्तर से वह गहराई में जाकर उप-चेतना का संसर्ग पा सकता है। कोई अपनी अन्तर-प्रज्ञा से वास्तव में बात नहीं करता। सुख या दुख की जो अज्ञात अनुभूति उसे होती हैं, वह उन कारणों तक पहुँच जाती है जिसे वह स्वयं व्यक्त नहीं कर सकता। क्योंकि जैसे ही वह उन्हें (सुख-दुख की अनुभूतियों को) अभिव्यक्ति के स्तर तक ले जाता है—वे अपनी मौलिक प्रतिभिज्ञा खो देते हैं। यहाँ उपन्यासकार के लिए खींचातानी सी होती है। वह उपचेतना के मँडराते अस्तित्व को सीधे व्यापार में ला सकता है (नाटक-कार भी ऐसा कर सकता ह,) तथा वह इसे स्वगत भाषण से संबद्ध दिखा सकता है। वह गोपनीय जीवन पर अधिकार रखता है। "लेखक ने अपने मूल तत्व को कैसे जाना, वह उस लक्ष्य पर अटल नहीं रहा, वह अपने ध्येय से हट रहा है" आदि प्रश्न बहुत कुछ न्यायालयों की सी प्रवृत्ति रखते हैं। पाठक को जिस बात से मतलब है वह यह ह कि क्या गोपनीय जीवन तथा मनावेगों का बदला जाना अपराध है ?

वह हमें एक भुलावे में छोड़ देता है। मानवी-स्वभाव के इस प्रकार के साथ अब कथानक का क्या होगा ? अधिकांश साहित्यिक कृतियों में दो तत्व होते हैं—मानवी चरित्र और कला। अब हम एक ऊँचे पक्ष—कथानक को लेते हैं। कथानक न्यून पात्रों की जगह वृहद् समुदाय को लेकर चलता है। वे कलुषित तथा अप्रपंची भी होते हैं। उनका पौन भाग आइस-वर्ग (सागर के तैरते हिम-पर्वत) की तरह अन्तस्थ रहना है। उनमें अरस्तू के वर्णित तीनों असार्थक तत्वां का समावेश होता है। जब इन तत्वों का उन्मेष और आधिपत्य हो जाता है, तब इसका फल एक ऐसा उपन्यास होता है, जिसे असल में नाटक होना चाहिए था। किंतु उसे सामान्य उत्तेजना नहीं मिलती। वे उपन्यास मौन बैठ जाते हैं या कुछ क्षीण वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं और कथानक (जिसे मैं यहाँ एक राजकीय कार्यलेखा कहूँगा) जन-जीवन की उत्तेजना से शून्य रह जाता है। केवल यह कहने से काम नहीं चल सकता कि 'व्यक्तिवाद एक आवश्यक गुण है।' वास्तव में मेरी स्थिति व्यक्तियों पर ही निर्भर है, यह मैंने स्वच्छंदता से स्वीकार किया है। फिर भी यह काफी है कि वे सीमायें होती हैं और उन्हें अब पार किया

जा रहा है। पात्रों का बाहुल्य नहीं होना चाहिए तथा उन्हें उठने-बैठने-दौड़ने में समय नहीं नष्ट करना चाहिए। उन्हें कुछ देना ही चाहिए अन्यथा मनोरंजन खत्म हो जायेगा।

हमें कथानक की परिभाषा करने दीजिये। हम कहानी को—समय के परिणाम में घटनाओं के क्रम का लेखा—कहकर परिभाषित कर चुके हैं। कथानक भी घटनाओं का लेखा है। इसमें मुख्यता कारणों की होती है—'राजा की मृत्यु पर रानी का शोक' एक कथानक है। समय का लेखा इसमें सुरक्षित है, किंतु सकारणता का ध्यान इसे छिपा लेता है। इसी प्रकार 'रानी का देहांत होता है। कोई कारण नहीं जानता, जब तक यह पता नहीं चल जाता कि राजा की मृत्यु के शोक के कारण ही ऐसा हुआ।' यह एक कथानक है। जिसमें भेद है, तथा यह एक ऐसा रूप भी है, जिसे विस्तार दिया जा सकता है। यह समय सोच-विचार को समाप्त कर सकता है। यह कहानी से उतनी दूर चला जाता है, जितनी दूर उसकी सीमा स्वीकृति दे। रानी को मृत्यु पर विचार कीजिये। यदि यह (घटना) किसी कथा के अंतर्गत हो, तो हम कहेंगे—'तब फिर?' यदि किसी कथानक में हो तो कहेंगे—'क्यों?' उपन्यास के दो मौलिक पक्षों में वही एक भेद है। कथानक कंदराओं के आदिवासियों, विलासी सुलतानों अथवा आधुनिक वंशज छायावाद की जनता को नहीं सुनाया जा सकता। उन्हें केवल जागृत रखा जा सकता है, और तब वे अपना कुतूहल उत्पन्न कर सकते हैं। किंतु एक कथानक प्रतिभा तथा स्मरण शक्ति की भी अपेक्षा रखता है।

कुतूहल मानवीय मस्तिष्क—शक्ति में सबसे छोटी एक शक्ति है, दैनिक जीवन में आप देखेंगे कि जब ये लोग आश्चर्यचकित होते हैं तब प्रायः उनका स्मरण उथला और अंत में निष्प्रयोजन हो जाता है, वह व्यक्ति जो आरंभ में ही आपके भाई-बहिनों की संख्या पूछता है—कभी सहानुभूतिपूर्ण नहीं हो सकता, और यदि एक वर्ष उपरांत वह फिर आपसे मिले, तो संभवतः (पुनः) पूछेगा कि आपके कितने भाई या बहिनें हैं। उसका मुँह फिर से खुलकर काँपेगा तथा उसकी आँखें फिर से उग सी उठेंगी। ऐसे आदमी से मित्रता करना कठिन है, और इसलिये भी कि दो कठोर व्यक्तियों का मित्र होना असंभव होना चाहिये। कुतूहल स्वयं हमें एक अत्यंत छोटी पगडंडी तक ले जाता है, वह हमें उपन्यास में किसी दूरस्थ सीमा तक नहीं ले जा

सकता—उसकी पहुँच केवल कहानी तक है, यदि हम कथानक को ग्रहण करना चाहें, तो उसमें प्रतिभा तथा स्मरण-शक्ति का भी हमें योग देना चाहिये।

प्रतिभा प्रथम है। एक प्रतिभा-सम्पन्न उपन्यास-पाठक, जो एक कौतूहल प्रधान पाठक से भिन्न हो, मस्तिष्क से उसे ग्रहण कर लेता है। वह उसे दो दृष्टिकोणों से देखता है। पृथक रूप से तथा पूर्व पृष्ठों में पढ़े हुए तथ्यों के संबंध रूप से। संभवतः वह उसे समझता नहीं है, किंतु वह ऐसा करना भी एकाएक निश्चित नहीं कर लेता। किसी सुसंगठित उपन्यास के तथ्य (अहंवादी की तरह) प्रायः किसी पत्र-व्यवहार की तरह की प्रकृति के होते हैं और एक आदर्श दर्शक (पाठक) उनकी झलक तब तक नहीं पा सकता, जब तक वह उसके अंतिम सिरे के पास एक पहाड़ी पर नहीं बैठता। आश्चर्य या गोरखधंधे का यह तत्व—जो कभी-कभी निर्व्याज रूप से 'जासूसी' कह दिया जाता है, कथानक में बड़ा महत्वपूर्ण होता है। इसका जन्म समय के रद्दोबदल से होता है, और जटिलता से घटित होता है, जैसे—'रानी का देहावसान क्यों हुआ?' अत्यधिक विनम्रता, अर्थ अनुमानित विचार तथा शब्दों में इसका वास्तविक अर्थ कई पृष्ठ आगे-पीछे गौण रहता है। यह अलौकिकता कथानक के लिए अत्यंत आवश्यक है और प्रतिभा के अभाव में यह प्रशंसनीय भी नहीं है। 'विस्मय एक अलग वस्तु है' और तब इस अलौकिकता को सराहने के लिए मस्तिष्क के एक भाग को पीछे देना होगा—निर्माण के लिये, जब कि अन्य भाग गतिशील रहेंगे।

अब हमारी दूसरी अर्हता—स्मृति की बात आती है। स्मृति तथा प्रतिभा का निकट संबंध है, इसलिए हम प्रतिभा के अध्ययन के बिना उसे नहीं समझ सकते। यदि रानी की मृत्यु तक आते-आते हम राजा के अस्तित्व को भुला बैठें, तो यह जानना हमारे लिये संभव नहीं होगा कि रानी की मृत्यु कैसे हुई? कथानक का प्रपोता हमसे ध्यान की अपेक्षा करता है, हम उससे यह अपेक्षा करते हैं कि वह अस्पष्ट अंत न कर दे। किसी कथानक की प्रत्येक गति या शब्द की गणना होनी चाहिये, और यहाँ तक कि जटिल होते हुए भी उसमें अलौकिकता (रहस्य) हो किंतु वह पथ-भ्रांत न हो..........
और जैसे-जैसे वह अनावृत होगा, पाठक की स्मृति उस पर मँडरायेगी तथा प्रज्ञा (मस्तिष्क का वह भद्दा प्रकरण जिसका सिरा प्रकाशमान प्रतिभा है),

विचार और योजना, नव समस्यायें, कारण तथा परिणाम की शृंखलायें, अंतिम चेतन (यदि कथानक चारु हो) समस्या या शृंखलामय नहीं, प्रत्युत सौंदर्यपूर्ण, महान तथा ऐसा होगा, जिसे उपन्यासकार ने एकाएक प्रदर्शित किया हो, किंतु यदि यह सीधे-सादे रख दिया जाता तो कभी सुंदर न होता, अपनी खोज में यहाँ हम पहली बार सौंदर्य तक आये हैं। सौंदर्य उपन्यास का लक्ष्य कभी नहीं होना चाहिए, यद्यपि उसके अभाव में उपन्यासकार असफल रहता है। वह सौंदर्य को बाद में यथायोग्य प्रश्रय देता है, उस बीच सौंदर्य को 'पूर्ण कथानक' का ही एक भाग समझना चाहिए। वह उस जगह (कथानक में) किंचित् विस्मय भी दिखाता है और उसे किंचित् विस्मित दिखाई पड़ना चाहिए। यह भाव (विस्मय) उसके आनन पर फलता भी खूब है, जैसे 'वेटेसिली' अपनी चित्रित लहरों से उदित वायु के झोंकों तथा फूलों में देखती थी। सुंदरता, जो हमें विस्मित न दिखाई पड़े और अपना उचित स्थान चाहे हमें गीत नाट्य की प्रमुख गायिका की याद दिलाती है।

× × × ×

कभी-कभी कथानक पूर्ण जयी होता है। पात्रों को अपना स्वभाव प्रत्येक 'टर्न' पर बदलना पड़ता है, या कभी-कभी वे भाग्य के प्रवाह में पड़कर हमारी सत्यानुभूति को क्षीण कर देते हैं। ये उदाहरण हम ऐसे लेखक में पायेंगे, जो मैड्थि से बड़ा, किंतु उपन्यास-लेखन में कम सफल था—टामस हार्डी। मुझे तो वास्तव में हार्डी एक कवि जान पड़ता है, जो अपने उपन्यासों पर सुदीर्घ ऊँचाई से दृष्टि डालता हो। वे दुखांत हों, या दुखमय सुखांत, वे जैसे ही विस्तार पायें, उन्हें हथौड़ों जैसी आवाज छोड़ देनी चाहिए। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि हार्डी कारणीभूत बातों पर जोर देकर घटनायें संकलित करता है। धरातल का प्रमुख तो कथानक ही है और पात्रों का निर्माण उसकी आवश्यकताओं के मिस होता है। 'टैस' के व्यक्तित्व को छोड़कर (जिसमें उसकी व्यक्तित्व निहित पर घोषित की गई है।) उसके ग्रंथों का पक्ष बड़ा असंतोषी है, उसके पात्र विविध जालों में गुँथे हैं, वे सुंदरता से हाथ-पाँव-बद्ध हैं वहाँ निर्मूल भाग्य का प्राबल्य है, और फिर भी किसी भी किये गये बलिदान में उसके लिये हम जीवन की कोई गति नहीं पाते—जैसा कि 'एंटीगोते', 'बेरेनिसी' या 'दि चैरी आचर्ड' में दर्शनीय है।

पात्र के तथा कथानक के युद्ध में बाजी खोने पर प्रायः एक कायरतापूर्ण

बदला लिया जाता है। प्रायः सभी उपन्यास अंततः शिथिल हो जाते हैं। यह इसलिये होता है कि कथानक को सँवारने की आवश्यकता होती है। यह क्यों आवश्यक है ? एक ऐसी प्रथा का क्यों अभाव है, जहाँ उपन्यासकार को—जैसे ही वह उकताने लगे—विश्रांति की अनुमति हो ? आह, उसे सामान बटोरना ही पड़ता है, और उसके कार्य करने में ही पात्र भर जाते हैं, और हमारा अंतिम निश्चय उनकी मृत दशा में होता है।

अधिक से अधिक साधारणीकरण करके यह कहना होगा कि उपन्यासों का यह परंपरित दुर्गुण है, जो अंत में निकल जाते हैं। साथ ही इसके दो कारण और भी हैं। प्रथम तो वह उत्साह है, जो किसी उपन्यासकार को मजदूरों की भाँति डरा देता है, और दूसरी वह कठिनाई है, जिसकी चर्चा हम कर रहे थे। पात्र अनियंत्रित होते जाते हैं। पहले उनकी जो नींव पड़ती है, उस पर उनका निर्माण नहीं हो पाता और अब तो स्वयं उपन्यासकार को ही श्रम करना पड़ता है। इसलिए कि उचित समय में कार्य पूर्ण हो जाए। वह बहाना करता है कि पात्र उसके इंगित पर चलते हैं, निभर हैं। वह उनके नाम बताकर उनके वार्तालाप रखता जाता है, किंतु पात्र (वास्तव में) या पृथक हो जाते हैं, या मर ही जाते हैं।

तब कथानक ही तार्किक-बौद्धिक दृष्टिकोण से उपन्यास है। उसमें रहस्य होना चाहिये, किंतु बाद में उसका निरावरण भी होना चाहिये। पाठक अनभिज्ञ विश्व में भले ही भटकता रहे, किंतु लेखक तो उसे पथभ्रांत नहीं करता। वह अपने कार्य का विषद अनुभवी तब कहा जायेगा, जब एक प्रकाश की किरण यहाँ, तथा एक अजानी चुटकी वहाँ लेते हुये (कथानक-लेखक की समृद्धि से) वह अपने समृद्ध पात्रों से बात करेगा, जिनका कि निर्माण उसने चारुतम किया हो। वह कल्पना में अपनी पुस्तक की रचना कर लेता है, वह उसके ऊपर रहता है तथा वह अपनी रुचि और परिणाम से एक पूर्व निश्चय कर लेता है।.......और अब हमें स्वयं निर्णय करने दीजिये, कि किस प्रकार का ढाँचा एक उपन्यास के लिये उपयुक्त है ? एक उपन्यास की योजना क्यों की जाती है ? क्या वह स्वयं नहीं बढ़ सकता ? उसका एक नाटक की तरह अंत क्यों न होना चाहिए ? क्या वह खुला नहीं रह सकता ? उस पर दृष्टि रखने तथा उसे नियंत्रित करने की जगह, क्या उपन्यासकार उसमें स्वयं अपने को डालकर किसी ऐसी गन्तव्य भूमि

पर नहीं पहुँच सकता जिसे उसने पहले न सोचा हो ? कथानक उत्तेजक तथा संभवतः सुन्दर हो सकता है, किंतु वह जंगली नहीं होता, वह नाटक से नहीं लिया जाता, जिसमें रंगमंच के संधि-सूत्र हों। क्या उपन्यास एक ढाँचा इस प्रकार का नहीं बना सकता जो इतना तर्कपूर्ण न होकर प्रतिभा के अनुकूल न हो ?

आधुनिक लेखक उसे संभव बताते हैं। ....

× × × ×

कोई अन्य वस्तु स्पष्टतः दृष्टि में आती है, जिसे हम अभी अतिरंजित समझते हैं। हम चेतना से अर्धचेतन होने का दावा भी संदेह से देख सकते हैं। किसी प्रकार से एक ऐसा विस्तृत तथा व्यर्थ निलय है, जहाँ अर्धचेतना प्रविष्ट होती है। काव्य, धर्म तथा वासना को अभी हमने नहीं लिया है, और चूँकि हम आलोचक हैं—केवल आलोचक—अतः हमें उन्हें इंद्र-धनुप के रंगों में बैठा लेने दीजिये। हम अपनी माँ की समाधि पर (उपन्यास के तत्वों पर) पहले ही दृष्टि डालकर उस पर हरीतिमा उगा चुके हैं।

आधुनिक उपन्यास का प्रारंभिक विकास

उपन्यास आधुनिक युग की देन है। यद्यपि यह शब्द संस्कृत भाषा का है, किंतु प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं हुआ, जिसमें हम आज करते हैं। भारत की कई प्रांतीय भाषाओं में यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। तेलगु आदि दक्षिण भारत की भाषाओं में यह शब्द हिंदी के 'व्याख्यान', 'वक्तृता' आदि अर्थों में प्रचलित है। अमरुक के प्रसिद्ध श्लोक 'निर्यातःशन-कैरलीक वचनोपान्यास मालीजनयः' में का 'उपन्यास' लगभग इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दक्षिणी भाषाओं में अंग्रेजी 'नावेल' शब्द के लिये एक संस्कृत शब्द 'नवल' बना लिया गया है। इस संबंध में एक विद्वान ने लिखा है,'..............उपन्यास वस्तुतः ही नवल अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, परंतु फिर भी जिस मेधावी ने 'कथा', 'आख्यायिका' आदि शब्दों को छोड़कर अंग्रेजी 'नावेल' का प्रतिशब्द उपन्यास माना था, उसकी सूझ की प्रशंसा किए बिना नहीं रह जाता। जहाँ उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांग पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है, वहीं इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप-निकट, न्यास-रखना) यह भी सूचित किया कि इस विशेष साहित्यांग के द्वारा ग्रंथकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इसीलिये यद्यपि यह शब्द पुरानी परंपरा के प्रयोग के अनुकूल नहीं पड़ता, तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिलकुल बे मेल नहीं कहा जा सकता।'[1]

'उपन्यास' शब्द का प्रयोग पहले बँगला में प्रारंभ हुआ था। बाद में इस

---

१. दे० *'साहित्य संदेश', उपन्यास अंक, १९४०।*

शब्द को हिंदी तथा अन्य भाषाओं ने अपना लिया। 'उपन्यास' शब्द पहले, जिसका अर्थ रखना या स्थापित करना है, 'उप' उपसर्ग जोड़कर बनाया गया है, जिसका अर्थ बृहत्कथा, या अँग्रेजी शब्द 'नावेल' के अर्थ में लिया जाता है। १

आधुनिक हिंदी गद्य का प्रारंभ ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के समय से हुआ। जो अंग्रेज भारत आते थे, उनके लिए देशी भाषाओं का ज्ञान कराना आवश्यक समझा जाता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यकता इस बात की प्रतीत हुई कि हिंदी की कुछ ऐसी पुस्तकें तैयार कराई जाएँ, जो सरल गद्य भाषा में हों। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज के तत्वावधान में कुछ लेखकों को यह कार्य सौंपा गया। सरल भाषा में कथा-कहानी आदि की ही पुस्तकें लिखना प्रारंभ में उचित समझा गया। सन् १८०० के लगभग, इसी उद्देश्य से इंशाल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। यद्यपि ये पुस्तकें उपन्यास नहीं कही जाएँगी, लेकिन यह माना जाता है, कि इनमें उपन्यास के बीज अवश्य थे।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा न समझना चाहिए कि इन दोनों पुस्तकों से पहले कोई उपन्यास या कहानी लिखे ही नहीं गये। वास्तव में इससे पहले भी 'बैताल पचीसी', 'माधनानल का बदला', 'शकुंतला', 'सिंहासन बत्तीसी', 'किस्सा तोता मैना,' तथा 'किस्सा साढ़े तीन यार', 'गोरा बादल की कथा,' तथा 'राजा भोज का सपना' आदि पुस्तकों की रचना हो चुकी थी। यद्यपि इन पुस्तकों का साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है, किंतु ये हमारे कथा साहित्य की प्रारंभिक रचनाएँ होने के कारण अपना ऐतिहासिक महत्व निश्चय ही रखती हैं। संस्कृत के 'हितोपदेश' तथा 'पंचतन्त्र' की ही भाँति इन पुस्तकों का लक्ष्य शिक्षा देना मात्र था।

वास्तव में आधुनिक उपन्यास का वास्तविक विकास यूरोप के सांस्कृतिक जागरण से प्रारंभ होता है। २ जागृति की यह लहर इटली से उठी थी। वहाँ के प्रसिद्ध उपन्यासकार बुकाचियो की रचना 'डी कामेरन' इस काल की प्रसिद्ध

---

१. *'हिंदुस्तानी'* ।

२. *'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष'* ।

रचना है। यूरोप की कहानी-लेखन-कला का यह सबसे पहला महत्वपूर्ण ग्रंथ है। बहुत से नीतिवादी इस पुस्तक को पसंद नहीं करते। इसकी भाषा बड़ी सजीव है। विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। यूरोप में, बाद में जो कथा साहित्य की अद्भुत उन्नति हुई, उसका सूत्रपात यहीं से हुआ।[१]

स्पेन के प्रसिद्ध उपन्यासकार सरवांटे की प्रसिद्ध कृति 'डान क्विक्जोट' सत्रहवां शताब्दी के प्रारंभ में प्रकाशित हुई थी। इंगलैंड में सर फिलिप सिडनी 'आर्केडिया', जान वनियन 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस', डेनियल डिफो 'राबिंसन क्रूसो' तथा जोनेदन स्विफ्ट 'गिलीवर्स टे्वल' आदि उपन्याासों की की रचना करके प्रसिद्ध हो चुके थे। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में सेम्यूअल रिचर्डसन ने 'पामेला', स्मालेट ने 'राडेरिक रैंडम' तथा हेनरी फील्डिंग ने 'टाम जोंस' नामक अमर उपन्यासों की रचना की। इसके बाद तो उपन्यास साहित्य की बहुत अधिक उन्नति हुई। इस काल के प्रमुख यूरोपीय उपन्यासकारों में इंगलैंड के स्टर्न, ओलिवर गोल्डस्मिथ, जेन आस्टिन, सर वाल्टर स्काट, चार्ल्स-डिकेंस, चार्ल्स ब्रांट, ठैकरे तथा जार्ज इलियट, फ्रांस के वालटेयर, विक्टर ह्यूगो, बालजाक, स्टेंढाल, जार्ज सेंड, जोला, फ्लाबेयर तथा अनातोल फ्रांस, जर्मनी के गेटे, रूस के पुश्किन, तुर्गनेव, डास्टावस्की, टाल्सटाय आदि नाम उल्लेखनीय हैं।[२]

हमारे देश में जिस समय राष्ट्रीय जागृत प्रारंभ हुई थी, उस समय तक यूरोपीय उपन्यास साहित्य का काफी विकास हो चुका था। लेकिन हिंदी में में उपन्यास का विकास पाश्चात्य उपन्यासों की नकल पर नहीं हुआ। चूंकि बॅंगला में हिंदी से पहले ही अच्छे उपन्यासों का लिखा जाना प्रारंभ हो चुका था, अतः उसके अनुकरण पर हिंदी में मौलिक उपन्यास तो लिखे ही गये, साथ ही अनेक बँगला उपन्यास का अनुवाद भी हुआ।

भारतेंदु ने सर्वप्रथम 'पूर्ण प्रकाश और चंद्रप्रभा' नामक हिंदी का सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास प्रकाशित किया, जो अनुवादित था और दुर्भाग्यवश वह उसे पूरा भी न कर सके। इस उपन्यास में लेखक ने वृद्धविवाह

---

१. दे० *'प्रगतिवाद की रूपरेखा'* ।

२. दे० *'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष'* ।

आदि कुप्रथाओं का विरोध किया है तथा स्त्री-शिक्षा का समर्थन। इसके बाद हिंदी का सबसे पहला मौलिक उपन्यास, लाला श्रीनिवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु', प्रकाशित हुआ। यह एक शिक्षा-उपन्यास है। इस उपन्यास द्वारा सामाजिक उपन्यासों की जिस परंपरा का प्रारंभ हुआ, वह बराबर चलती रही, पर उसका समुचित विकास न हो सका। चूँकि उपन्यास गद्य-साहित्य का अत्यंत लोक-प्रिय रूप है, अतः इसकी ओर तत्कालीन लेखकों का ध्यान आकर्षित हुआ, लेकिन लाला श्रीनिवास दास की रचना में जो कथा-कौशल मिलता है, वह अन्य किसी में नहीं। १

'परीक्षा गुरु' के बाद पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' नामक दो उपन्यास लिखे। श्री राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिंदू' नामक उपन्यास भी इसके बाद (सन् १८९० में) प्रकाशित हुआ। फिर श्री किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'लवंग लता'. तथा 'कुसुम कुमारी', गोपालराम गहमरी लिखित 'नये बाबू', 'सास पतोहू', और 'बड़ा भाई' तथा कार्तिकप्रसाद खत्री लिखित 'जया' क्रमशः १८९०, १८९४ तथा १८९६ में प्रकाशित हुये। श्री लज्जाराम मेहता लिखित 'धूर्त रसिकलाल' तथा 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' आदि उपन्यास लगभग १८९८ में प्रकाशित हुये। इसी के एक वर्ष बाद पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय लिखित 'ठेठ हिंदी का ठाठ' नामक उपन्यास (सन् १८९९) प्रकाशित हुआ।

इस युग के पहले उपन्यास लेखक बाबू देवकीनंदन खत्री थे। इनके लिखे हुये अनेक उपन्यास हैं—'नरेंद्र मोहनी', 'कुसुम कुमारी', 'वीरेंद्र वीर', 'चंद्रकांता' तथा 'चंद्रकांता संतति' आदि। इनके उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना-वैचित्र्य ही था, रस-संचार अथवा चरित्र-निर्माण आदि नहीं। आचार्य शुक्ल ने इनके उपन्यासों के संबंध में लिखा है—'ये वास्तव में घटना-प्रधान कथानक या किस्से हैं, जिनमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे वे साहित्य की कोटि में नहीं आते। पर हिंदी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन खत्री का स्मरण इस बात के लिये सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किये, उतने और किसी ने नहीं। चंद्रकांता पढ़ने के लिने न जाने कितनी उर्दू-

---

१ दे० *'आलोचना', उपन्यास अंक।*

नीवी लोगों ने हिंदी सीखी। 'चंद्रकांता' पढ़ चुकने पर वे 'चंद्रकांता' की किस्म की कोई किताब ढूँढ़ने में परेशान रहते थे। शुरू-शुरू में 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' पढ़कर न जाने कितने नवयुवक हिंदी के लेखक हो गये। 'चंद्रकांता' पढ़कर वे हिंदी की और प्रकार की पुस्तकें भी पढ़ चले और अभ्यास हो जाने पर कुछ लिखने भी लगे।'

स्वर्गीय प्रेमचंद जी का अनुमान था कि बाबू देवकीनंदन खत्री ने 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' का बीजांकुर 'तिलस्म होशरुबा' से ही लिया होगा। 'तिलस्म होशरुबा' फारसी का एक बड़ा पोथा है, जिसके रचयिता अकबर के दरबारी फौजी कहे जाते हैं। इस पोथे का उर्दू में अनुवाद हो गया है। १

श्री सूर्यनाथ तकरू खत्री जी के 'चंद्रकांता' के सबंध में लिखते हैं— 'रोचकता की तो उस पुस्तक में हद है। ड्यूमा या वाल्टर स्काट को छोड़कर इतना रोचक लेखक मुझे और कोई नहीं मिला। आप उनकी पुस्तकें पढ़िये। कभी ऊबियगा नहीं। ये केवल मनोरंजन के लिये लिखते थे और इसमें पूर्णतः सफल भी हुये। ये रोम्या रोलां, टाल्सटाय या गोर्की के ढर्रे के लेखक नहीं थे। इनकी श्रेणी स्काट या ड्यूमा की श्रेणी है। आजकल के कुछ अल्पज्ञ समालोचक उन बातों को असंभव कहकर टाल देते हैं। इस संबंध में स्वयं खत्री जी ने लिखा है—'कौन सी बात हो सकती है और कौन नहीं हो सकती, इसका विचार प्रत्येक पुरुष की योग्यता और देश, काल, पात्र से संबंध रखता है। फिर जब तक मनुष्य कौतूहल का कुप्रवृत्ति नहीं मान लेता तब तक कौतूहलमयी रचनायें भी बुरी नहीं कही जा सकती। स्काट की सभी कृतियाँ, ड्यूमा के सभी ग्रंथ, वेल्स और चेस्टर्टन की अनेक कृतियाँ क्या सभी संभव हैं ? क्या समूची 'अरेबियन नाइट्स' संभव है ? पर क्या आप उन पर हँस सकते है ? यदि नहीं, तो फिर किसलिये अपने स्काट पर, अपने ड्यूमा पर हँसते है ? क्या केवल इसीलिये कि वह आपके घर का सिद्ध पुरुप है ?' इसी तरह लोग खत्री जी की कृतियों में अश्लीलता का आरोप लगाते हैं इनमें से कितने ही ऐसे हैं, जो खत्री जी की रचनाओं से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। मैं उन्हें निमंत्रण

---

१ दे० 'हिंदी उपन्यास'।

देता हूँ कि वे कहीं से भी इस आरोप को सिद्ध करें। यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या है। पहले यह कुत्सित उद्देश्य से फैलाया गया था, पर अब तो लिखी लकीरों की फकीरी की जाती है।' १

उपर्युक्त मतों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि खत्री जी के उपन्यास साहित्यिक दृष्टि से भले ही अधिक महत्व न रखते हों, लेकिन कम से कम इतना तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि उनका महत्त्व अन्य दृष्टियों से बहुत अधिक है। उनके उपन्यासों की सभी घटनाएँ कल्पना पर आधारित नहीं हैं, बल्कि बहुत हद तक यथार्थ का अंश उनमें है। साथ ही उनके उपन्यासों में और भी गुण हैं। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है, लेकिन उस शक्ति से परिपूर्ण, जिसमें साधारण पाठकों को आकर्षित कर लेने की पूर्ण क्षमता है।

खत्री जी के बाद हमारे दूसरे बड़े उपन्यासकार पं० किशोरीलाल गोस्वामी हैं। इनकी अधिकांश रचनाएँ साहित्यिक कही जायँगी। इन्होंने उपन्यासों में प्रेम-तत्व का समावेश करके हिंदी उपन्यासों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को अंतर्मुखी बनाने का प्रयास किया। लेकिन यह प्रेम विलास और वासनामय था और उस पर लखनऊ के नवाबों की पूरी-पूरी छाप थी। इसलिए गोस्वामी जी के उपन्यास भविष्य के उपन्यासों को कोई संदेश नहीं दे सके। तो भी प्रेम अंतर की वस्तु है। गोस्वामी जी के उपन्यास हिंदी में पहले अंतर्मुखी उपन्यास कहे जा सकते हैं। २ चरित्र-चित्रण में भी इन्हें यथेष्ट सफलता मिली है। उपन्यास-लेखकों में गोस्वामी जी का वही स्थान माना जाता है, जो नाटककारों में भारतेंदु का। इनके प्रमुख उपन्यास 'तारा', 'रजिया बेगम', 'राजकुमारी', 'लावण्यमयी', 'सुखशर्वरी' 'प्रेममयी', प्रणयिनी-परिचय', तथा 'चंपाकली' आदि हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में अनेक सामाजिक समस्याओं पर विचार किया है। इनके कुछ उपन्यासों में हिंदू-स्त्री के आदर्श भी रखे गये हैं। हिंदी में स्काट की शैली पर लिखने वालों में किशोरीलाल गोस्वामी का पहला स्थान है। २ डा० श्रीकृष्णलाल ने गोस्वामी जी के उपन्यासों के संबंध में लिखा है—'किशोरीलाल गोस्वामी, जिन्होंने पहले

---

१ दे० *'विशाल भारत', मई, १९३८।*

२ दे० *'आधुनिक हिंदी साहित्य'।*

पहल हिंदी उपन्यासों में नाटकीय कला के विविध गुणों का सफल आरोपण किया। वह खत्री जी के 'चंद्रकांता' से भी पहले 'कुसुम कुमारी' की रचना १८८६ में कर चुके थे, यद्यपि इसका प्रकाशन १९०१ के पहले न हो सका। इस ग्रन्थ की प्रेरणा उन्हें रीति-कवियों से मिली, जिन्होंने अपने मुक्तक काव्यो के लिए नायिका-भेद एक ऐसा विषय चुना, जिसका संबंध मूल रूप से नाटकों से ही था। किशोरीलाल स्वयं उसी परंपरा के कवि थे, उन्होंने नायिका-भेद तथा अन्य रीति-साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। इसलिए जब वे उपन्यास लिखने बैठे तब उन्हें केवल एक सुसंगत प्रेम कहानी की कल्पना करनी पड़ी और उसमें उन्होंने प्राचीन कवियों की परंपरानुसार प्रेम संबंधी विविध प्रसंगों को यथावसर अनेक अध्यायों में गद्यात्मक भाषा में जड़ दिया। उनके 'तारा' 'अंगूठी का नगीना' तथा अन्य उपन्यास हर्ष और राजशेखर के संस्कृत प्रेम-नाटकों का का स्मरण दिलाते हैं। परंपरा गत प्रेम-अभिसार, मान, परिहास इत्यादि इसमें भरे पड़े है।' १

हिंदी में जासूस उपन्यासों की नींव डालने वाले श्री गोपालराम गहमरी हैं। इन्होंने सन् १८९४ से जासूसी उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। एक जासूसी पत्रिका का प्रकाशन भी इन्होंने प्रारंभ किया था, जो काफी समय तक प्रकाशित होती रही। इनके उपन्यास कला की दृष्टि से खत्री जी के उपन्यासों से श्रेष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त गहमरी जी के उपन्यासों की एक और विशेषता यह है कि वह तिलस्मी, ऐय्यारी तथा ऐसे ही अन्य जासूसी उपन्यासों की अपेक्षा वास्तविक जीवन के अधिक निकट हैं। किंतु इतना होते हुए भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि इनके उपन्यासों में खत्री जी के उपन्यासों की तरह भाव, मनोवेग, तथा अंतर्जगत के सूक्ष्म विश्लेषण का समावेश नहीं है। इनमें बुद्धि का चमत्कार और कौशल ही प्रमुख आकर्षण है। गहमरी जी के उपन्यासों में 'रहस्य विप्लव,' 'जासूस की बुद्धि', 'भयंकर भेद', 'हंसादेवी' तथा 'गुमनाम चिट्ठी' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कुछ लोग गहमरी जी को हिंदी का कानन डायल तक कहते हैं।

इसके पश्चात् पं० 'हरिऔध' के दो उपन्यासों का नाम आता है—(१) 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा (२) 'अधखिला फूल'। ये दोनों उपन्यास क्रमश

---

१. *'आधुनिक हिंदी साहित्य'।*

संवत् १९५६ तथा १९६४ में प्रकाशित हुए। किंतु इन दोनों उपन्यासों की रचना औपन्यासिक कौशल की दृष्टि से न की जाकर भाषा के नमूने की दृष्टि से की गई। उनकी सबसे पहली लिखी पुस्तक 'वेनिस का बाँका' में जैसे भाषा संस्कृतपन की सीमा पर पहुँची हुई थी, वैसे ही इन दोनों पुस्तकों में ठेठपन की हद दिखाई देती है। इन तीनों पुस्तकों को सामने रखने पर पहला ख्याल यही पैदा होता है कि उपाध्याय जी क्लिष्ट संस्कृतप्रायः भाषा भी लिख सकते हैं और सरल से सरल ठेठ हिंदी भी। अधिकतर इसी भाषा-वैचित्र्य पर ख्याल जमकर रह जाता है।' २

पं० लज्जाराम मेहता ने भी प्राचीन हिंदू मर्यादा, हिंदू धर्म, तथा हिंदू पारिवारिक व्यवस्था की सुंदरता तथा समीचीनता दिखाने के लिये कुछ उपन्यास लिखे, जिनमें 'धूर्त रसिकलाल' (१९५९), 'हिंदू गृहस्थ', 'आदर्श दंपति', (१९६१), 'बिगड़े का सुधार' (१९६४) तथा 'आदर्श हिंदू' (संवत् १९७२) आदि मुख्य हैं।

काव्य-कोटि में आनेवाले भाव-प्रधान उपन्यास, जिनमें भावों या मनोविकारों की प्रगल्भ और वेगवती व्यंजना का लक्ष्य प्रधान हो— चरित्र-चित्रण या घटना-वैचित्र्य का नहीं—हिंदी में न देख और बँगला में काफी देख, बाबू ब्रजनंदन सहाय ने दो उपन्यास इसी ढंग के प्रस्तुत किए— (१) 'सौंदर्योपासक' और 'राधाकांत' (१९६९)। एक आलोचक ने इनके संबंध में लिखा है—'सौंदर्योपासक' तो केवल एक व्यक्ति की अनुभूतियों की व्यंजना मात्र है। उसके सौंदर्य प्रेमी मन ने कभी उसे चैन न लेने दिया और सदैव हृदय में एक टीस बनी रही, इस उपन्यास में उसी की अभिव्यक्ति है। भाव, घटनायें और चरित्र तीनों के सम्यक योग में ही उपन्यास की सफलता है, क्योंकि जीवन में तीनों का योग है। इनमें से किसी भी तथ्य की उपेक्षा से इस कला में पूर्णता न आ सकेगी। परंतु हिंदी के बाल काल में इन तथ्यों के सामंजस्य के स्थान पर एकांगिता की ही ओर अधिक दृष्टि रही और प्रधानतया घटनाओं का ही बोलवाला

---

२. *'हिंदी साहित्य का इतिहास'* ।

रहा। बाबू ब्रजनंदन सहाय का प्रयत्न भी एकांगी ही रहा और इसीलिये उपन्यास-कला की दृष्टि से उसका बहुत अधिक महत्व नहीं।' १

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हिंदी उपन्यास का जन्म और विकास कुछ विशेष परिस्थितियों में हुआ। और उन परिस्थितियों का हिंदी उपन्यास के विकास पर क्रमशः जो प्रभाव पड़ता गया, वह भी स्पष्ट है। हम इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते कि उस युग के उपन्यास उद्देश्यहीन हैं, अथवा उनका कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है, या उपन्यास कला या साहित्यिक दृष्टि से उनका कोई महत्व नहीं है। यह भी नहीं माना जा सकता कि उनके कथानक साधारण तिलस्म और ऐय्यारी पर ही आधरित है या उनमें समाज का यथार्थ चित्रण नहीं है, या उनमें जीवन के विविध पक्षों और उनसे संबंधित समस्याओं को नहीं उठाया गया है अथवा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वे सर्वथा से असफल हैं।

प्रेमचंद युग में जिस प्रकार का उपन्यास साहित्य लिखा गया, उसका बीजारोपण इसी युग में हो चुका था—प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यासकारों द्वारा। हाँ, एक परिवर्तन अथवा विभिन्नता जो प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यास-कारों की कृतियों में तथा प्रेमचंद युग के उपन्यासकारों की कृतियों में, हमें स्पष्ट दिखाई देती है, वह है उपन्यास संबंधी दृष्टिकोण का परिवर्तित हो जाना। प्रेमचंद के पूर्व हिंदी उपन्यास कल्पना पर ही आधारित था लेकिन बाद में वह ऊपर उठकर यथार्थ के धरातल को छूने लगा। इन दो युगों के उपन्यासों में काफी भिन्नता होने का यह भी एक कारण है।

---

१ 'हिंदी उपन्यास'।

हिंदी उपन्यास का प्रवृत्तिगत विकास

यहाँ हम हिंदी उपन्यास के प्रवृत्तिगत विकास की चर्चा करेंगे। चूँकि हिंदी उपन्यास के विकास की तीन अवस्थायें अथवा काल ही मुख्य हैं, अतः हम कालक्रम के अनुसार ही प्रवृत्तियों का विकास भी देखेंगे। पहले काल को भारतेंदु काल अर्थात् प्रेमचंद का पूर्ववर्ती काल; दूसरे को प्रेमचंद काल तथा तीसरे को प्रेमचंद का परवर्ती काल मान कर, हम इसी वर्गीकृत काल-भेद के अनुसार हिंदी के उपन्यासों की मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करने की चेष्टा करेंगे।

प्रेमचंद का पूर्ववर्ती काल

इस काल के उपन्यासों में हमें मुख्यतयः तीन प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जिनमें पहली प्रवृत्ति है कल्पनाशील-विलक्षणता। हम जानते हैं कि यह हिंदी उपन्यास के विकास की प्रथम स्थिति थी। अतः यह स्वाभाविक था कि जनता अथवा पाठकों में साहित्य के इस नये अंग के प्रति तीव्र आकर्षण उत्पन्न किया जाये। इस युग के तीनों प्रमुख उपन्यासकारों—दुर्गाप्रसाद खत्री, गोपालराम गहमरी तथा किशोरीलाल गोस्वामी—ने अपनी-अपनी कृतियों में इस दिशा में प्रयत्न भी किया है। इस प्रकार के उपन्यासों में जासूसी, तिलस्मी रहस्य-रोमांचपूर्ण घटनाओं का संचयन प्रारम्भ से अंत तक रहता है। उपर्युक्त तीनों लेखकों के अधिकांश उपन्यास और इस प्रारंभिक काल का सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'चंद्रकांता संतति' आदि इसी ढंग के हैं। यहाँ एक बात यह समझ लेनी चाहिये कि इस प्रकार के उपन्यासों में कोई कलात्मकता हमें नहीं मिलती है। यदि इन उपन्यासों का किसी कारण

से कोई महत्व है तो वह यही कि उन्होंने जनता की रुचि उपन्यास में बढ़ाई और इससे उपन्यासकारों को प्रोत्साहन मिला। और बाद में, इसी के फलस्वरूप श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना संभव हो सकी।

दूसरी प्रवृत्ति समाजिक है। इसके अंतर्गत वे सभी उपन्यास आ जाते हैं जिनमें किसी भी रूप में, किसी सामाजिक समस्या पर विचार किया गया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखित 'पूर्ण प्रकाश और चंद्र प्रभा' नामक उपन्यास हिंदी का सर्वप्रथम सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है। लेकिन यह उपन्यास मौलिक नहीं, अनुवादित था और दुर्भाग्यवश यह पूरा भी न हो सका। इस उपन्यास में वृद्ध-विवाह तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया गया है तथा स्त्री-शिक्षा का समर्थन। इससे इस बात का पता चलता है कि इस समय तक नए विचारों का आकलन साहित्य के क्षेत्र में होने लगा था। मौलिक उपन्यासों में 'परीक्षा गुरु' (ले० लाला श्रीनिवास दास) 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' (ले० श्री बालकृष्ण भट्ट) और 'निस्सहाय हिंदू' (ले० श्री राधाकृष्ण दास) आदि महत्वपूर्ण हैं।

उपर्युक्त उपन्यासों में, विशेष रूप से 'परीक्षा गुरु' में जो चित्रण हैं, वे तत्कालीन सामाजिक जीवन की मुख्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करने में सहायक हो सकते हैं। इस उपन्यास में एक मध्यवर्गीय व्यापरी की स्थिति का का चित्रण है और इसमें नई और पुरानी पीढ़ियों की विषमता का वर्णन किया गया है। 'नूतन ब्रह्मचारी' में छात्रों को नैतिक शिक्षा दी गई है। इस उपन्यास में एक युवक के नैतिक आचरण से प्रभावित होकर होकर एक डाकू सुधर जाता है। ऐसा ही सुधार 'सौ अजान एक सुजान' में दो धनी व्यापारी भाइयों का एक सुमित्र की सहायता से होता है—जब उनका दुष्टों के साथ के कारण पतन हो जाता है। 'निस्सहाय हिंदू' गोवध-निवारण विषय पर लिखा गया है। 'ठेठ हिंदी का ठाठ' (ले० श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय) में भी एक सामाजिक समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने अनमेल विवाह का दुष्परिणाम दिखाया है।

इस युग की तीसरी प्रवृत्ति राजनैतिक कही जा सकती है, यद्यपि इस प्रकार के उपन्यास शायद नहीं के बराबर हैं। हमें इस प्रवृत्ति की झलक

उपन्यासों में स्थान-स्थान पर मिलती है जो तत्कालीन राजनैतिक चेतना और रष्ट्रीय जागृति की द्योतक है।

प्रेमचंद काल

यह हिन्दी उपन्यास सर्वाधिक उन्नत, समृद्ध काल है। इस काल में में उपन्यास साहित्य की बहुत अधिक उन्नति हुई। इस काल में कुछ तो इतने श्रेष्ठ उपन्यास लिखे गये हैं जिन पर हम गर्व कर सकते हैं, और जो विश्व-उपन्यास-साहित्य में आते हैं। चूँकि इस काल में साहित्य की सर्वांगीण उन्नति हुई और विशेष रूप से उपन्यास की, अतः इस काल के उपन्यासों में विभिन्न प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें यहाँ लिया जा रहा है।

सबसे हम पहले यथार्थवादी प्रवृत्ति को लेते हैं। प्रेमचंद के पहले हिंदी उपन्यास का आधार मात्र कल्पना और रोमांस ही थी यद्यपि कुछ अन्य विषयों पर भी उपन्यास लिखे गए थे। लेकिन इस युग के संबंध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसमें काफी यथार्थवादी चित्रण हुआ। साथ ही यथार्थवाद का मानदंड क्या हो ?—इसको लेकर भी आलोचकों में काफी तर्क-वितर्क हुआ। प्रेमचंद के इस कथन पर कि कला दिखती तो यथार्थ है पर यथार्थ होती नहीं, उसकी खूबी यह है कि वह यथार्थ मालूम होती है, डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—इससे मालूम होता है कि कला यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करती है, परन्तु वह एक काल्पनिक स्वर्ग की रचना नहीं करती। यदि मनुष्य साहित्य में यथार्थ की पुनरावृत्ति नहीं चाहता, तो फिर यथार्थ का यह भ्रम खड़ा करने की क्या जरूरत है ? जैसे यथार्थ वैसे उसका भ्रम—बल्कि भ्रम से शायद ज्यादा भय हो क्योंकि जीवित मनुष्य से मनुष्य का भूत ज्यादा भयकारी होता है।[१]

एक स्थान पर उन्होंने यह भी लिखा है कि प्रेमचंद को यथार्थवाद से इसलिए भय है कि वह भयंकर है और मनुष्य को पतन की ओर ले जाने वाला है। उनका यह दृढ़ विश्वास कि मनुष्य कमजोरियों का पुतला है

---

१ डा० रामविलास शर्मा—'प्रेमचंद'

और उसकी कमजोरियों का चित्रण उसके लिये घातक हो सकता है, उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण का मूल कारण है । १

यथार्थवादी साहित्य के संबंध में डा० प्रेमनारायण शुक्ल ने लिखा है—'यथार्थवादी साहित्य साधारणतयः कोरी भावुकता से बहुत दूर है । उसमें रोमांटिक साहित्य की भाँति की कल्पना-प्रवणता नहीं है । यह तो जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन है । यथार्थवादी साहित्यकार जीवन के ही संबंध में यथार्थ अनुभव प्राप्त करने एवं उसी के संबंध में चिंतन करने में निरंतर प्रयत्नवान रहता है । एतदर्थ उसका जीवन-दर्शन प्रायः अधिकाधिक मनोवैज्ञानिक होता जाता है, अस्तु उसकी अभिव्यंजना में भावुकता की अपेक्षा वर्णनात्मकता अधिक होती है ।' २

प्रेमचंद के प्रायः सभी उपन्यासों में यथार्थवादी प्रवृत्ति स्पष्ट देख पड़ती है । कुछ लोग आदर्शवाद और यथार्थवाद के समन्वित रूप या सम्मिश्रण को नई संज्ञा 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' देते हैं । डा० शर्मा ने लिखा है—'आदर्शवाद को साहित्य में लाने के लिए प्रेमचंद यथार्थवाद की सहायता जरूरी समझते हैं ।' कुछ ऐसा ही सुश्रीशचीरानी गुटू ने लिखा है-'प्रेमचंद जी आदर्शवादी कलाकार हैं । उनका मत है कि कला जीवन के लिये है न कि केवल कला के लिये । उनके यथार्थवाद पर आदर्शवाद का मानो मुलम्मा चढ़ा रहता है, किन्तु कहीं भी आदर्श के लिये कला की हत्या नहीं की गई । आदर्शवाद एवं कला का बहुत सुन्दर समन्वय उनके उपन्यासों की विशेषता है ।' ३ आदर्शवाद और यथार्थवाद के इसी समन्वय को आदर्शोन्मुख यथार्थ कहा जाता है ।

यथार्थवादी साहित्य की ओट में जो अश्लील और नग्न चित्रण होने लगे, उन्हें देखकर यह समझा गया कि शायद यथार्थवाद का भ्रामक अर्थ हमारे साहित्यकारों ने लगाया है । श्री गुलाबराय ने लिखा है—'यथार्थवाद के नाम पर विलास और वासनामय जीवन के अतिरंजित चित्र अंकित किये जाते हैं, नारकीय जीवन को उभार में लाया जाता है और कल्पना

---

१ डाक्टर रामविलास शर्मा—'प्रेमचद' ।

२ डा० प्रेमनारायण शुक्ल—'हिंदी साहित्य में विविध वाद' ।

३ डा० इंद्रनाथ मदान द्वारा संपादित 'प्रेमचंद चिंतन और कला' ।

के निर्बाध और निरावरण नृत्य के लिए निमंत्रण दिया जाता है। तथाकथित यथार्थवादी उपन्यासकारों की दूसरी उक्ति यह है कि वे समाज को उन गहन शर्तों से बचते हैं, जिनमें कि लोग प्रायः पड़ जाते हैं। उसके बहाने वे वास्तव में उन गहन शर्तों और भीषण अंधकारमय कंदराओं का पथ-प्रदर्शन कर देते हैं।'१

यथार्थवाद का वास्तविक स्वरूप क्या है? यह स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है—'यह मैं नहीं कहता कि तुमने जो कुछ लिखा है, वह यथार्थ नहीं है। उनकी (इच्छाओं और प्रवृत्तियों की) नग्न यथार्थता ने ही उन्हें इतना घृणित बना दिया है। यथार्थ का रूप अत्ययंत भयंकर होता है और हम यथार्थ को ही आदर्श मान लें, तो संसार में नरक तुल्य हो जायें।'२

'प्रसाद' के दोनों उपन्यासों—'कंकाल' और 'तितली'—में यथार्थवादी प्रवृत्ति मिलती है। हम यहाँ 'कंकाल' से एक यथार्थवादी चित्रण संबंधी उद्धरण दे रहे हैं—'दशाश्वमेघ घाट वाली चुंगी चौकी से सटा हुआ जो पीपल का वृक्ष है उसके नीचे कितने ही मनुष्य कहलाने वाले प्राणियों का ठिकाना है। पुण्य स्नान करनेवाली बुढ़ियों की बाँस की डाली में से निकल कर चार-चार चावल सबों के फटे अंचलों में पड़ जाते हैं। उनसे कितनों के विकृत अंग की पुष्टि होती है। काशी में बड़े-बड़े अनाथालय, बड़े-बड़े अन्न-सत्र हैं, और उनके संचालक स्वर्ग में जानेवाली आकाश कुसुमों-सी सीढ़ी की कल्पना छाती फुलाकर करते हैं। पर इन्हें तो झुकी हुई कमर, झुर्रियों से भरे हाथों वाली, रामनामी ओढ़े हुए अन्नपूर्णा की प्रतिमायें ही दो दाने दे देती हैं।'

इस काल की दूसरी प्रवृत्ति समाज-सुधार की कही जा सकती है। यों तो प्रेमचंद के पूर्व ही इस प्रवृत्ति की बहुलता दिखाई देती थी, लेकिन प्रेमचंद युग के उपन्यासों में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया। वैसे इसके अनेक कारण थे लेकिन मुख्य रूप से सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन ही इसका प्रमुख कारण था। इस समय तक भारतीय समाज में—शिक्षित

---

१ 'आलोचना' उपन्यास अङ्क।

२ प्रेमचन्द 'कायाकल्प'।

तथा अशिक्षित दोनों वर्गों में—नवीनता की लहर आयी थी—प्राचीनता की प्रतिक्रिया स्वरूप। अतः जन-जीवन की मान्यतायें बदल रही थीं, दृष्टिकोण बदल रहे थे और विचारधारा में भी परिवर्तन हो रहा था। इस व्यपक परिवर्तन के फलस्वरूप अनेक धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। चूँकि हम सिर्फ समाज-सुधार की प्रवृत्ति पर विचार कर रहे हैं अतः हमें केवल सामाजिक आंदोलनों—और धार्मिक से भी—यहाँ मतलब रखना चाहिए।

स्थूल रूप से हम कह सकते हैं कि—जहाँ तक प्रेमचंद का सवाल है—उनके सभी उपन्यासों में हमें किसी न किसी रूप में समाज-सुधार की यह प्रवृत्ति मिलती है, विशेष रूप से 'सेवासदन', 'निर्मला', और 'गबन' में। प्रसाद के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी ही बात है। उनके दोनों उपन्यासों 'कंकाल' और 'तितली' में हमें यह प्रवृत्ति मिलती है। यद्यपि उनका तीसरा (अपूर्ण) उपन्यास 'इरावती' इस ढंग का नहीं था। श्री वृन्दावनलाल वर्मा के कुछ सामाजिक उपन्यासों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। श्री कौशिक का उपन्यास 'माँ' भी ऐसा ही है। इन सबों में वृद्ध-विवाह, बालविवाह, दहेज, वेश्या-समस्या, हिंदू-मुस्लिम-समस्या तथा कुछ अन्य समस्यायें ली गई हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं के वृद्ध-विवाह की समस्या 'निर्मला' और 'गोदान' में बाल विवाह की समस्या 'गोदान' में, दहेज की समस्या 'सेवासदन' और 'निर्मला' में. वेश्या-संबंधी समस्या 'मंच' (राजेश्वर प्रसाद १९२८) 'सेवासदन' (प्रेमचन्द) 'वेश्या पुत्र' (ऋषभचरण जैन १९२९) 'पाप और पुण्य' (प्रफुल्लचंदराय ओझा १९३९) 'पतिता की साधना' (भगवती प्रसाद बाजपेयी १९३६) 'अप्सरा' (निराला १९३०) तथा 'वेश्या का हृदय' (धनीराम १९३३) आदि उपन्यासों में, अनमेल विवाह की समस्या 'निर्मला' (प्रेमचन्द १९२३) 'क्षमा' (श्रीनाथसिंह १९२५) 'मीठी चुटकी' (भगवतीप्रसाद बाजपेयी १९२१) 'अनाथ पत्नी' (भगवती प्रसाद बाजपेयी १९२८) 'तलाक' (प्रफुल्लचंद ओझा १९३२) 'गोदान' (प्रेमचंद) आदि उपन्यासों में, हिन्दू मुस्लिम समस्या 'प्रेमाश्रम' (प्रेमचंद १९२२) 'रंगभूमि' (प्रेमचंद १९२४) 'कायाकल्प' (प्रेमचन्द १९२८) आदि उपन्यासों में; ग्राम्य जीवन की समस्यायें 'देहाती दुनिया' (शिवपूजन सहाय १९२६) 'तितली' (प्रसाद १९३४) 'प्रेमाश्रम,' 'कर्मभूमि,' 'गोदान' (प्रेमचंद १९३६) आदि उपन्यासों में, विधवा समस्या 'हृदय का काँटा'

(तेज रानी दीक्षित १९२८) 'प्रतिज्ञा' (प्रेमचन्द १९२८) 'गबन' (प्रेमचंद) 'विधवा के पत्र' (चतुर सेन शास्त्री १९३३) 'अमर अभिलाषा' (चतुर सेन शास्त्री १९३३) आदि उपन्यासों में उठाई गई है।

तीसरी प्रवृत्ति राजनैतिक अथवा राष्ट्रीयता की कही जा सकती है। चूँकि यह युग राष्ट्रीय जागृति का था अतः इस प्रवृत्ति-प्रधान उपन्यासों की रचना बहुत बड़ी संख्या में हुई। यशपाल, राहुल तथा कुछ अन्य उपन्यासकारों के साथ ही साथ प्रेमचन्द के भी कुछ उपन्यासों ('कायाकल्प' आदि) में हमें यह प्रवृत्ति मिलती है। इस प्रकार के उपन्यासों में राष्ट्रीय जागृति, राजनैतिक स्वतन्त्रता का महत्व, उसे प्राप्त करने के उपाय, क्रान्ति की आवश्यकता, क्रान्ति किस प्रकार की हो, आदि प्रश्नों पर ही विचार किया गया है। अनेक उपन्यास सशस्त्र क्रान्ति की असफलता-विफलता पर ही हैं।

चौथी प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक है। इसके अन्तर्गत सेक्स, स्वच्छंद प्रेम, विवाह आदि अनेक समस्यायें उठाई गई हैं। जैनेंद्र के उपन्यास 'परख' (१९३०) के द्वारा इस प्रवृत्ति का विकास होता है। यह प्रवृत्ति अपने विकसित अथवा व्यापक रूप में प्रेमचंदोत्तर काल में ही मिलती है।

इस काल में प्रेमचन्द काल की प्रायः सभी समाज-सुधार की प्रवृत्तियाँ विकास की ओर अग्रसर हुईं। यद्यपि समाज-सुधार सम्बन्धी उपन्यास इस युग में अन्य प्रवृत्तियों की अपेक्षा कम लिखे गये। मनोविज्ञान, सेक्स, स्वच्छंद प्रेम की समस्या इस युग में सर्वाधिक दिखाई पड़ती है। श्री इलाचंद्र जोशी ('निर्वासित', 'सन्यासी') श्री अज्ञेय ('शेखर एक जीवनी', 'नदी के द्वीप') श्री अश्क ('गिरती दीवारें', 'गर्मराख') श्री यशपाल ('मनुष्य के रूप' आदि) श्री जैनेंद्र ('त्यागपत्र'; 'सुनीता') श्री वृन्दावनलाल वर्मा ('अमरबेल', 'अचल मेरा कोई') श्री भगवतीचरण वर्मा ('चित्रलेखा' 'आखिरी दाँव') श्री अमृतलाल नागर ('महाकाल') डा० धर्मवीर भारती, ('गुनाहों का देवता') श्री सियारामशरण गुप्त ('नारी') तथा अन्य कुछ उपन्यासों में हमें यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। कुछ उपन्यासकार (श्री इला-चंद्रजोशी आदि) फ्रायड से काफी प्रभावित दिखाई देते हैं। उपर्युक्त सभी उपन्यासों में न्यूनाधिक मात्रा में नारी विषयक समस्याओं (प्रश्नों)

पर ही विचार किया गया है। इनमें से कुछ पर अश्लीलता तथा नग्न चित्रण आदि का दोष भी लगाया गया है—वर्तमान आलोचकों द्वारा।

इन सब उपन्यासों की मुख्य प्रवृत्तियाँ—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यही हैं कि क्या नारी मात्र भोग का साधन है? नैतिकता का क्या मान दंड होना चाहिए? स्वच्छंद प्रेम की समस्या का निवारण कैसे हो? क्या समाज इस संबंध में पूर्ण स्वतन्त्रता दे? पाप और पुण्य क्या हैं? और इन्हीं सब गुत्थियों को सुलझाने में उपर्युक्त उपन्यासकारों को खुद काफी उलझना पड़ता है।

प्रेमचंद युग के बाद द्वितीय महायुद्ध हुआ और भारत की सन् बयालीस की सशस्त्र क्रान्ति। साम्यवादी तथा गान्धीवादी विचार धाराओं का काफी प्रचार हुआ। अतः राजनैतिक प्रवृत्तियों—यों तो ये प्रेमचंद युग से ही प्रारम्भ हो गई थीं—के इस काल के काफी उपन्यास मिलते हैं। सन् १९३५ से लेकर १९५० तक तो पचास प्रतिशत् उपन्यासों में यही प्रवृत्ति मिलती है। सन् १९५० के बाद से ऐसे उपन्यास प्रायः कम ही लिखे जाते हैं। इस प्रवृत्ति के उपन्यासकार यों तो बहुत से हैं लेकिन विशेष रूप से राहुल और यशपाल ही हैं। जैनेंद्र के एकाध उपन्यास भी ऐसे ही हैं। भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी तथा रांगेय राघव ने भी इस ढंग के उपन्यास लिखे हैं।

इस काल की तीसरी प्रमुख प्रवृत्ति ऐतिहासिक है। राहुल सांकृत्यायन तथा वृन्दावन लाल वर्मा—ये दो ही उपन्यासकार ऐसे हैं, जिन्होंने श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। राहुल सांकृत्यायन के कई उपन्यास तथा वृन्दावनलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई,' 'मुसाहिजू', 'गढ़कुंडार,' 'विराटा की पद्मिनी,' तथा 'मृगनयनी' आदि ऐसे ही उत्कृष्ट उपन्यास हैं। श्री चतुरसेन शास्त्री तथा डा० रांगेयराघव भी इस प्रवृत्ति के मुख्य उपन्यासकारों में माने जाते हैं। यशपाल का 'दिव्या' भी एक अत्यन्त उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास है।

वृन्दावनलाल वर्मा के तीन उपन्यास

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई'

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' श्री वृन्दावनलाल वर्मा का सर्वश्रेष्ठ है। इस ऐतिहासिक उपन्यास की कथा उस समय से आरंभ होती है जब भारत में मुगल साम्राज्य का पूर्णतया पतन हो गया था। भारत में कोई ऐसी शक्ति न बची थी जो अंग्रेजों का सामना कर सके। तत्कालीन देशी राजाओं तथा नवाबों की मनोवृत्ति दो प्रकार थी। एक तो वह लोग थे जो अंग्रेजों की कृपा से अभिलाषी थे। और दूसरे वे जो अँग्रेजी शासन के विरोधी थे। पहले प्रकार के लोग पूर्णतया अंग्रेजों के अधीन थे और इसी में वे प्रसन्न रहते थे। किन्तु दूसरी कोटि के लोगों के हृदय में उत्साह और साहस था। वे स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए बड़े सा बड़ा त्याग करने को तैयार ऐसे लोगों में रानी लक्ष्मीबाई का नाम सबसे पहले आता है। वर्मा जी ने इसी [illegible] आदर्श नारी के जीवन और चरित्र पर यह उपन्यास लिखा है।

'झाँसी की रानी' की कथा संक्षेप में यों है—छोटी बालिका मनू आरंभ से ही बहुत साहसी थी। वह महत्वाकांक्षिणी भी थी और उसे विश्वास था कि आगे चलकर उसके भाग्य में एक नहीं दस हाथी बदे हो सकते हैं।

कुछ बड़े होने पर उसके लिए वर ढूँढ़ा जाता है। पुरोहित उसकी जन्म पत्री देखकर यह भविष्य वाणी करता है कि यह बालिका किसी राज्य की रानी होगी। भाग्यवश झाँसी के विधुर राजा गंगाधर राव से उसकी पत्री मिल जाती है और वह यह संबंध स्वीकार कर लेते हैं। विवाह की लगन निश्चित कर ली जाती है।

कुछ समय बाद राजा गंगाधर राव के एक पुत्र जन्म लेता है किंतु वह तीन महीने का होकर ही मर जाता है। राजा के हृदय को कड़ा आघात पहुँचता है और वह निराश हो जाता है। अन्त में दो वर्ष बाद वह एक साजातीय बालक को गोद ले लेता है और इसके बाद कुछ ही समय में उनका परलोकवास हो जाता है।

इस समय रानी लक्ष्मीबाई की आयु केवल १८ वर्ष की थी। उसका हृदय पति की मृत्यु के इस कठोर आघात की कठिनाई से सहन कर पाता है किन्तु वह दृढ़ता से अपने सामने आई हुई विपत्तियों का सामना करने को तैयार हो जाती है। अंग्रेजों की सेना झाँसी में बढ़ते देख वह मन ही मन विरोध करने का निश्चय करती है और दीवानखास में बैठकर एक भावी कार्यक्रम की योजना बनाती है।

नवाब अली बहादुर अंग्रेजी शासक एलिस से घनिष्टता बढ़ाने का प्रयत्न करता है और झाँसी के विरुद्ध उसकी सहायता करने का वचन देता है। कुछ ही समय में कम्पनी झाँसी को अपने राज्य में मिलाने की घोषणा कर देती है। एलिस झाँसी में आकर अंग्रेजी सरकार की ओर से प्रबन्ध करने लगता है और वहाँ अंग्रेजी राज्य की घोपणा कर देता है। अँग्रेजी अधिकारी गार्डन और स्कीन को अली बहादुर से झाँसी की गुप्त खबरें मिलती रहती हैं।

रानी लक्ष्मीबाई अपने कार्यक्रम के अनुसार आगे कार्य करती रहती है। वह अपने साथियों की सहायता से विद्रोह कर देती है जब अंग्रेज लोग दिल्ली आदि के झगड़ों में व्यस्त हो जाते हैं तब रानी तत्कालीन परिस्थितियों को काबू में कर झाँसी का शासन अपने हाथ में लेती है और मुख्य पदों पर अपने आदमियों को नियुक्त करती है। सेना बढ़ाई जाती है, तोपें सजाई जाती हैं। झाँसी के विरुद्ध नत्थे खाँ आक्रमण करता है। युद्ध होता है और उसे भागना पड़ता है।

अंग्रेजी फौज का जनरल रोज झाँसी के निकट आकर पड़ाव डाल देता है। दोनों ओर से भीषण तैयारी होती है। और युद्ध आरंभ हो जाता है। कई दिन बीत जाते हैं, किंतु दोनों ओर से युद्ध में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं प्रकट होती है। जब एक दिन युद्ध अपनी तेजी

पर होता है तो पीर अली और दूल्हाजू के षड्यंत्र से अंग्रेज किले में प्रवेश कर जाते हैं। रानी को किला छोड़कर भागना पड़ता है। वह कालपी जाती है। लेकिन वहाँ भी उसकी सेना की हार होती है और वह ग्वालियर भागती है। जनरल रोज ग्वालियर की ओर बढ़ता है फिर मुकाबला होता है। अन्त में अनेक गोलियों और तलवारों के घावों के कारण रानी अचेत होकर गिर जाती है और कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो जाती है।

रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र एक ऐसी आदर्श रमणी का चरित्र है जो हमारे मस्तक को गर्व से ऊँचा उठा देता है। वह भारतीय जनता के सामने एक अत्यंत उच्च आदर्श उपस्थित करती है। एक कुशल शासक होने के साथ-साथ वीरता और साहस में भी वह अद्वितीय है। वह ललित कलाओं की पोषक थीं। रानी लक्ष्मीबाई भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपने बलिदान द्वारा भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर अपनी कहानी रक्त से लिख जाती है और इस प्रकार भारतवासियों के हृदयों पर एक अमिट छाप लगा जाती है।

रानी लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त मोतीबाई तथा सुन्दर आदि कुछ अन्य नारियाँ भी हैं जो अपने उज्ज्वल चरित्र से हमको प्रभावित करती हैं। पुरुष चरित्रों में राजा गंगाधर, गौस खाॅ, सागर सिंह तथा खुदा बख्श आदि चरित्र प्रभावशाली हैं। लेखक इन सब पात्रों के चरित का चित्रण करने में पूर्ण रूप से सफल हुआ है।

वर्मा जी की शैली इस उपन्यास में अधिक उत्कृष्ट है विशेष रूप से भावात्मक शैली। दो उदाहरण देखिये —

(क) रानी--कदापि नहीं ? कभी नहीं ? मैं लड़ूँगी। उन गरीबों के हित की रक्षा के लिए। ऋषियों का रक्त ऐसा हीन और क्षीण नहीं हो गया है कि उनकी संतान तपस्या न कर सके, कीड़े मकोड़ों की तरह यों ही विलीन हो जाय।

(ख) नहीं। कृष्ण अमर हैं। गीता अक्षय है। हम लोग अमट हैं। भगवान की दया से, शंकर के प्रताप से मैं बतलाऊँगी कि अभी भारत में कितनी लौ शेष है, और यदि मैं इस प्रयत्न में मारी गई

तो क्या होगा। कोई दूसरा तपस्वी मुझसे अच्छा खड़ा हो जायगा। और इस भूमि का उद्धार करेगा। तपस्या का क्रम खंडित नहीं होगा।

वर्मा जी की व्यंगात्मक शैली रोचक है। राजा गंगाधर राव रानी से कहते हैं कि गाना नाचना आदि विद्यायें यदि स्त्रियाँ ढंग से सीखे तो शरीर और मन दोनों के लिये काफी कसरत पा सकती हैं। यह सुनकर रानी व्यंग करती हैं—हाँ। स्वराज्य स्थापित है। अब सिवाय हँसने खेलने के नर-नारियों के लिये काम ही क्या बचा है? देखिए न किस आराम के साथ झाँसी राज्य का पंच भाग से अधिक अंग्रेजों के हाथ में दे दिया? आपका वह मित्र गार्डन भी नाट्यशाला में आता होगा।

राजा कहते हैं अंग्रेज खूब हँसते खेलते हैं और नाचते गाते हैं...............।

रानी फिर व्यंग करती है—और नाचते-गाते ही पूरे हिंदुस्तान को रौंदते चले जाते हैं, खेल तो बढ़िया है।

वह राजा से यह भी पूछती है आपके यहाँ के भाँड़ केवल प्रशंसा और यश गान ही करते हैं या कभी-कभी कड़खा भी सुनाते हैं?

संक्षेप में, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई कला की दृष्टि से वर्मा जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। लेखक ने इसमें झाँसी की रानी जैसे गौरवपूर्ण चरित्र को उसी के अनुरूप और अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार की यही सबसे बड़ी सफलता है।

'मृगनयनी'

'मृगनयनी' प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री वृंदावनलाल वर्मा का एक प्रसिद्ध, चरित्र-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास की रचना करने के पूर्व भी वर्मा जी कई श्रेष्ठ उपन्यास—ऐतिहासिक उपन्यास—हिंदी जगत को भेंट कर चुके थे, जिनमें 'गढ़ कुंडार' तथा 'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' तो अपने ढंग के अनूठे हैं। 'मृगनयनी' की तरह ही ये दोनों उपन्यास भी ऐतिहासिक हैं, और भारतीय इतिहास की कुछ प्रसिद्ध कथाओं के आधार पर लिखे गए हैं। कहने का मतलब यह है कि 'मृगनयनी' के द्वारा वर्मा जी ने इस क्षेत्र विशेष में कोई नया प्रयास नहीं किया है। यह एक

मँजे हुए उपन्यासकार की रचना है—उस उपन्यासकार की, जो 'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' जैसी उत्कृष्ट कृति की रचना कर चुका है। अतः मृगनयनी के लेखक से हमें कुछ अधिक प्रौढ़ता की आशा करनी चाहिए। हम यहाँ यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि इस उपन्यास में वर्मा जी कला का कहाँ तक, और, विकास हो सका है।

'मृगनयनी' निन्नी नामक एक गूजर कृषक कन्या तथा ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर की प्रणय-कथा पर आधारित उपन्यास है। इस कथा के पैरलल ही अटल और लाखी की कथा है, जो आदि से अंत तक चलती है। 'मृगनयनी' में वर्मा जी ने कल्पना की सहायता से ऐतिहासिक तथ्य को एक बड़े ही प्रभावशाली रूप में हमारे सामने रखा है। उपन्यास में वर्णित विभिन्न घटनाएँ तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, तथा धार्मिक स्थितियों पर प्रकाश डालती हैं, जिससे हमारे सामने इनका स्पष्ट चित्र खिंच जाता है।

संक्षेप में 'मृगनयनी' की कथा यों है—"ग्वालियर के पश्चिम-दक्षिण में लगभग छह कोस की दूरी पर सांक नदी के किनारे राई नाम का एक गाँव है। हमारे आलोच्य उपन्यास की नायिका निन्नी और उसका भाई अटल इसी गाँव में रहते हैं। लाखी निन्नी की सहेली है। और अटल की ओर आकर्षित है। दोनों का पारस्परिक आकर्षण धीरे-धीरे यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों एक दिन एक दूसरे के सदा साथ रहने की प्रतिज्ञा भी कर लेते हैं। अटल लाखी के साथ विवाह के संबंध में अपने गाँव के पुजारी बोधन का मन भी टोहता है। वह यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसमें और लाखी में—गूजरों और अहीरों में—बोधन विवाह करा सकता है अथवा नहीं। पुजारी इस संबंध में अपनी असमर्थता प्रकट करता है और बात ही बात में अटल को यह भी बताता है कि वह शीघ्र ही राजा मानसिंह के पास ग्वालियर जाने वाला है। अटल बोधन से, ग्वालियर में निन्नी के लिए वर खोजने की प्रार्थना करता है, जिसके लिए बोधन उसे आश्वासन भी देता है।

पुजारी बोधन ग्वालियर में राजा मानसिंह के पास जाकर उस गूजर कन्या—निन्नी—के सौंदर्य और शौर्य की प्रशंसा करता है। मानसिंह इससे काफी प्रभावित होता है और कहता है कि वह शीघ्र ही राई गाँव में आएगा

और वहाँ शिकार खेलेगा। वहाँ के मंदिर का भी ठीक से निर्माण कराएगा। वह यह भी आश्वासन देता है कि वह अगले वर्ष की उगाही-अथाही भी छोड़ देगा।

इधर एक दिन जब निन्नी और लाखी शिकार खेलकर आती हैं, तो लाखी अपनी वृद्धा माँ को मरा पाती है। लाखी बहुत रोती है। अंत में, निम्मी और अटल के आग्रह से वह अपना सामान लेकर उन्हीं के यहाँ आकर रहने लगती है।

राजा मानसिंह राई गाँव में पधारते हैं। उनकी सवारी के आने की सूचना पाकर गाँव के लोग अपना-अपना काम बंद कर देते हैं और सूचना लानेवाले पुजारी को घेर लेते हैं। उनके चेहरों पर उत्सुकता और आल्हाद की रेखाएँ फैल जाती हैं। सभी लोग गाँव के बाहर इकट्ठा हो जाते हैं। राजा की सवारी आते ही निन्नी और लाखी दीपक जला लेती है। राजा घोड़े पर सवार होकर आता है। पुजारी उसके चंदन-तिलक लगाता है और माला पहनाता है। स्त्रियाँ उसकी आरती उतारती हैं। उन लोगों के फटे हुए मोटे, मैले-कुचैले कपड़े देखकर मानसिंह सोचता है, मैं इनका राजा हूँ। पुजारी बोधन राजा से फिर निन्नी की तारीफ करता है, जिसके उत्तर में राजा मुस्कराकर कहता है—'शास्त्री जी ! धन्य है यह गाँव, जहाँ सब गुणों से संपन्न मृगनयनी जैसी स्त्री हो।' इस पर पुजारी टोक कर कहता है—'महाराजाधिराज ! मृगनयनी कुमारी कन्या है।' और वह राजा को उसके भाई अटल का भी परिचय देता है।

दूसरे दिन राजा मानसिंह शिकार का आयोजन करता है। इस अवसर पर निन्नी अपने पराक्रम से सबको—और सबसे अधिक राजा मानसिंह को—चकित कर देती है। मानसिंह प्रसन्न होकर अपने गले से सोने का रत्नजटित हार उतारकर निन्नी के गले में डाल देता है। वह काँपते हुए स्वर से उससे प्रणय निवेदन करता है और उसे अपनी जीवन-संगिनी बनाने की अभिलाषा प्रकट करता है। गर्दन मोड़े हुए, कनखियों से देखते हुए, धड़कते हुए कलेजे और अर्द्धस्मित के साथ निन्नी अपना काँपता हुआ धूल भरा हाथ उसे देकर कहती है—'मैं नहीं जानती क्या करेंगे। मेरी पत रखना।' और मानसिंह फौरन आश्वासन देता है—'परमात्मा मेरा साची है। तुम सदा मेरे हृदय की रानी और जीवन की शोभा रहोगी।'

धीरे-धीरे इस बात का पता सारे गाँव को लग जाता है और सब यह जान जाते हैं कि सुन्दरी मृगनयनी राजा मानसिंह की विशेष स्नेह-भाजन हो गयी है। विवाह का मुहूर्त देखा जाता है। दो-तीन दिन में ही तिथि निकलती है। तैयारियाँ होने लगती हैं। राजा ग्वालियर से विजयजंगम को बुलाकर अपना पुरोहित बनाना है। लड़की पक्ष का पुरोहित बोधन बनता है। राजा की ओर से काफी धूमधाम की जाती है। विवाह हो जाता है और मृगनयनी राजा के ऐश्वर्य से प्रभावित होती हुई ग्वालियर पहुँच जाती है।

इधर गाँव में राजा और मृगनयनी के चले जाने के बाद सारी रौनक खत्म हो जाती है। लाखी और अटल को घर सूना-सूना मालूम होने लगता है। अटल बहुत शीघ्र ही अपना विवाह कर लेने का निश्चय कर लेता है। गाँव में इससे बड़ी सनसनी फैलती है। सभी इसका विरोध करते हैं। अत में, एक रात को वे दोनों सारा सामान बाँधकर गाँव से चल पड़ते हैं।

राजा मानसिंह के रनिवास में मृगनयनी के आने पर अन्य रानियाँ ईर्ष्या से जल उठती हैं। वे उसे अपमानित करने का अवसर मिलने पर चूकती भी नहीं। कुछ समय तक मानसिंह को युद्ध में लगे रहना पड़ता है। इस बीच अटल और लाखी भी ग्वालियर आ जाते हैं और राजा के मेहमान होते हैं। कुछ समय बाद, मृगनयनी के अनुरोध से मानसिंह लाखी और अटल का विवाह करा देता है। मानसिंह मृगनयनी के लिए 'गूजरी महल' भी बनवाता है। अब तक मृगनयनी राजसिंह और बालसिंह की माता भी हो जाती है।

ग्वालियर को जीतने के लिए सुलतान सिकंदर अंतिम प्रबल प्रयत्न करता है। वह कई ओर से आक्रमण करता है तथा नरवर और ग्वालियर पर एक साथ विजय प्राप्त करने की योजना बनाता है। मानसिंह भी साहस से उसका सामना करता है। वह भी अपनी सेना को कई हिस्सों में बाँट कर मोर्चे पर भेजता है। लाखी अटल के साथ शत्रुओं से गढ़ी की रक्षा करती हुई मारी जाती है। युद्ध में सिकंदर पराजित होता है और पीछे हट जाता है। अंत में, मृगनयनी और मानसिंह के शांतिपूर्ण परिवारिक जीवन की झलक दिखाकर लेखक उपन्यास समाप्त करता है।

उपन्यास के बीच में अन्य अनेक ऐसे कथा-प्रसंग आए हैं, जो ऐतिहासिक

तो हैं ही, प्रभावशाली तथा उपन्यास की मूल कथा के तारतम्य को बनाए रखने में सहायक भी हैं।

'मृगनयनी' अनेक आदर्श गुणों से युक्त एक श्रेष्ठ नारी है। उसके चरित्र की, संक्षेप में, चार प्रमुख विशेषताएँ हैं—एक—उसकी सरलता, दो—उसकी ईमानदारी, तीन—उसका त्याग और चार—उसकी कर्त्तव्य-भावना। ये सब विशेषताएँ मिलकर उसे एक अत्यंत प्रभावशाली स्वरूप प्रदान करती हैं। लाखी का चरित्र इतना उच्च नहीं है। एक ओर यदि उसमें कुछ विशेषताएँ हैं, तो दूसरी ओर अनेक नारी जाति की दुर्बलताएँ भी। उसका व्यक्तित्व आकर्षक तो है लेकिन प्रभावशाली नहीं। राजा मानसिंह का चरित्र साधारणतयः सामान्य ही है। वह एक ऐतिहासिक पुरुष हैं और इस दृष्टि से उनमें कोई दोष नहीं मिलता। उपन्यास की भाषा प्रवाहपूर्ण और शैली रोचक है।

कुल मिलाकर, 'मृगनयनी' ग्वालियर राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक ऐसा उपन्यास है, जो हमें, इस बात का स्पष्ट आभास देता है कि इस—ऐतिहासिक उपन्यास के—क्षेत्र में वर्मा जी ने जो प्रौढ़ता प्राप्त की है, वह इसकी परिचायक है कि भविष्य में वह इस ढंग की जो कृति हिंद-जगत् को देंगे, वह निश्चय ही एक आदर्श कृति होनी चाहिये।

अमरबेल

'अमरबेल' श्री वृन्दावनलाल वर्मा का नया सामाजिक उपन्यास है। यह उपन्यास सहकारिता के विषय के आधार पर लिखित महत्वपूर्ण रचना है। इस उपन्यास में वर्मा जी ने सहकारिता के प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया है और उसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। वर्मा जी ने, इसमें, उन गाँवों की—जिनमें सहकारिता के आधार पर कार्य प्रारंभ हो गया है, और जहाँ के निवासी इसमें विश्वास करने लगे हैं—दशा को चित्रित करके, व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस पर विचार किया है और सहकारिता का भविष्य क्या होगा, इस ओर भी संकेत किया है।

आज, हमारे भारतीय ग्रामों में जहाँ बहुत से लोग ऐसे हैं, जो सहकारिता के आधार पर खेती आदि करके अपना जीवन उन्नत बनाना चाहते हैं,

उसकी सफलता के लिए विभिन्न योजनाएँ बनाते हैं, उनकी सफलता के लिए प्रयत्न करते हैं, तथा उसके लिए त्याग करने को भी तैयार रहते हैं, वहाँ कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो ईमानदारी का श्रम किए बिना 'दुस्साहस-पूर्ण प्रयत्नों से रात भर में लखपती बन जाने की प्रवृति' रखते हैं।

'अमरबेल' की कथा मुख्यतयः दो विषयों पर आधारित है—सहकारिता की भावना तथा अफीम का अवैध व्यापार। बांगुर्दन के एक स्कूल का अध्यापक टहलराम, डा० सनेहीलाल, सरकारी अफसर राघवन आदि कुछ लोग ऐसे हैं, जो सहकारिता के महत्व को समझते और यह विश्वास करते हैं कि इसके आधार पर कार्य किया जाये, तो निश्चय ही भारतीय ग्रामीण-जीवन को ऊँचा उठाया जा सकता है। और सुहाना गाँव का पंद्रह आने जमींदार देशराज, उसकी सहपाठिनी कुमारी अंजना, नाहरगढ़ का जमींदार बाघराज, तथा कुख्यात डाकू कालीसिंह आदि व्यक्ति ऐसे हैं, जो चोरी से अफीम का व्यापार करते हैं। राजा बाघसिंह तथा डाकू कालीसिंह तो अफीम का व्यापार स्थायी रूप से करते हैं लेकिन जमींदार युवक देशराज और कुमारी अंजना इस उद्देश्य से कि शीघ्र ही दो लाख रुपए इस व्यापार में कमा लिए जाएँ और फिर दोनों विवाह करके सुखमय व्यतीत करें।

उपन्यास का घटना-क्रम उस समय से प्रारंभ होता है, जब जमींदारी-उन्मूलन की संभावना, विश्वास में परिवर्तित हो जाती है। सरकारी क्षेत्रों में यह आज्ञा जहाँ-तहाँ जारी कर दी जाती है कि चूँकि जमींदारी उन्मूलन से गाँवों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बहुत बड़ा अंतर आ जाएगा अतः यह आवश्यक समझा जाता है कि बढ़ती हुई जन-संख्या, अन्न की कमी तथा बेरोजगारी आदि बड़ी-बड़ी समस्याओं का सामना करने के लिये तैयार रहा जाए और इस दिशा में प्रयत्न करना प्रारंभ कर दिया जाए। इन समस्याओं को हल करने लिए सहकारिता के आधार पर खेती तथा कुटीर-उद्योगों आदि का विकास जरूरी जान पड़ता है।

'अमरबेल' की मुख्य कथा संक्षेप में यों है—सुहाना गाँव का जमींदार देशराज जमींदारी उन्मूलन की खबर पाकर काफी रुपया कमाने के लिए अपनी सहपाठिनी कुमारी अंजना की सहायता से अफीम का व्यापार तेजी से शुरू कर देता है। उसके गाँव में सहकारिता के आधार पर खेती

आदि करने को योजनाएँ बनती हैं, और वह जनता तथा सरकार—दोनों की दृष्टि में भले बने रहने के लिए उनमें यथासंभव सहायता करता है। अंजना अपने रूप की ओट में अफीम लाकर देशराज की हवेली तक पहुँचाती है। वह सेबों की पेटी में अफीम लाती है। स्टेशन पर चीफ आदि उन पर शक तो करते हैं, लेकिन प्रकट में नहीं। वह यही सोचकर रह जाते हैं कि पेटी वाले सेबों की अपेक्षा अंजना का रंग अधिक चोखा है और चाय-पान की दूकान वाले और मजदूर आदि यह सोचकर कि 'कुंवार के महीने की तितली' है। देशराज के यहाँ से वे पेटियाँ राजा बाघराज को सौंप दी जाती है। उससे रुपए लेकर अंजना अटैची में रख लेती है और बाघराज अफीम के पिंड अपने बक्स में। विदा लेते समय वह अपनी 'नुकीली चितवन और सजीली मुस्कान' बाघराज की आँखों में बिठलाती है, 'शायद देशराज की निगाह बचाकर'।

इसी बीच एक ऐसी घटना घट जाती है, जिसके कारण कुछ किसान देशराज के विरुद्ध हो जाते हैं। देशराज की मरी भैंस को चमार लोग उठाने से इनकार कर देते हैं। इस पर उसके पट्टीदार लाश उठा ले जाते हैं। लेकिन बाद में चमड़े के लिए दोनों दल आपस में झगड़ा करते हैं। देशराज के विरोध में एक जुलूस भी निकाला जाता है और देशराज की हवेली नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है। मामला पुलिस में चला जाता है, लेकिन इसी समय जमींदारी-उन्मूलन की घोषणा हो जाती है। अतः देशराज अपने और ग्रामीणों के बीच की खाई को पूरा करने के इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देता। वह राघवन को सुहाना में सहकारी समिति बनाने में पूर्ण सहयोग देकर पुनः किसानों के आदर और श्रद्धा का पात्र बनता है। साथ ही उसे एक लाभ और भी होता है—उसे पुलिस की सहानुभूति मिल जाती है—'वह कुछ और चाहता भी न था।' अब उसे चिंता है 'हरी पेटियों के सामान के दाम में अपना हिस्सा पाने की।'

देशराज सहकारी समिति की योजना के अवसर पर एक संगीत समारोह करता है। राघवन सबको यह सूचना देता है कि समिति की रजिस्ट्री हो गई है, अतः समिति के पदाधिकारियों का चुनाव फिर से कर लिया जाए और पूरे जोर से काम चला चालू कर दिया जाए। चुनाव होता है और देशराज सर्वसम्मति से प्रधान चुना जाता है। धरनीधर खजांची और बनमाली

मंत्री, तथा विक्रम, छदामी, और डा० सनेही पंच बनाए जाते हैं। उधर टहलराम भी बांगुर्दन में सहकारी-समिति बनाता है। दोनों समितियाँ अनेक योजनाएँ बनाती तथा उसकी सफलता के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहती हैं।

देशराज तथा अंजना अफीम का व्यापार करते रहते हैं। कई बार वे लोग पकड़े जाने को भी होते हैं, लेकिन कभी अंजना गायिका, कभी फिल्म-ऐक्ट्रेस और देशराज नेता और कैमरा मैन बनकर बाल-बाल बच जाते हैं।

नाहरगढ़ में राजा बाघसिंह एक सप्ताह तक खूब धूमधाम से संगीत समारोह मनाता है। सभी कलाकार अपनी कला की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते हैं। अंत में बीसों हजार का पुरस्कार देकर समारोह का अंत होता है। अंजना को विदा देते समय बाघराज उसकी आँखों से आँखें मिलाता है। 'उनमें मदीलापन था या जल भर आया था?' उसकी आँखें नीची पड़ जाती हैं। उसे संदेह होता है—'क्या कोई अभिनय है?' वह स्थिरता के साथ देखने प्रयत्न करता है। उसे 'अंजना के होठों पर एक सूक्ष्म स्पंदन' दिखाई पड़ता है। वह उसकी आँखों में और होठों पर जो कुछ देखता है, वह उसे उसके शब्दों से कहीं ज्यादा मालूम होता है। उसके गले में कंप हो आता है। कंपित स्वर में उसके यह कहते ही कि 'अंजना देवी, मैं अपने मन की आपसे क्या कहूँ। आज न जाने क्या से क्या हो गया।'—अंजना के मुँह से निकलता है—'महाराज ! मेरे महाराज ! !' और वह उठकर दरवाजे तक जाती है। किसी को भी वहाँ न देखकर वह पीछे से बाघराज के गले में हाथ डाल देती है। 'यह अभिनय नहीं है'—बाघराज के मन में बिजली-सी कौंधती है और वह 'बैठे-बैठे ही अपने दोनों हाथ पीछे की तरफ बढ़ाकर उसे समेट' लेता है। 'मैं और कुछ नहीं चाहती केवल यहाँ स्थान चाहती हूँ'—और यह कहकर वह 'बाघराज की छाती पर अपनी एक गदेली पसार' देती है। 'वह तो आपका हो ही गया है और जो कुछ यहाँ है उसे अपना समझिये।'—बाघराज उत्तर देता है।

लौटते समय बाघराज के सब मेहमान, उसी के इशारे से कालीसिंह द्वारा लूट लिये जाते हैं। पुलिस बाघराज को गिरफ्तार कर लेती है। देशराज अपना नया नवीन जीवन शुरू करने का निश्चय करता है। अंजना उसे

पत्र में लिखती है कि परेशानी की कोई बात नहीं। वह हिम्मत न हारे। उन दोनों का काम फिर चमकेगा। वह दिन में उसकी कतरब्योंत में लगी रहती है और रात में उसे देशराज दिखाई पड़ता है। लेकिन देशराज चूँकि अब अपना इरादा बदल चुका होता अतः उपेक्षा से उसे लिख देता है कि वह अब सिवाय खेती के कुछ नहीं करेगा, कुछ भी नहीं कर सकता है।

उपन्यास में इस मूल कथा के साथ ही टहल और हरको की कथा भी चलती है और उपन्यास का अंत उन दोनों की शादी के साथ होता है।

उपन्यास का नामकरण—अमरबेल—उन तरह-तरह की अमरबेलों के प्रतीक रूप में रखा गया है, जो समाज के वृक्ष को डसे जा रही हैं। वृक्ष अपने नये जीवन के लिए इन अमरबेलों के मारे कानून कहाँ बना पता है ? अमरबेलें तो शोषण के अपने मतलब का कानून बनाती हैं।................ वृक्षों की अमरबेलें दिखलाई पड़ती हैं। उनका काट फेकना सहज है पर समाज और व्यक्ति की अनेक अमरबेलें दिखलाई ही नहीं पड़तीं। इन अमरबेलों को नष्ट करने के साथ ही कहीं ऐसा न हो कि व्यक्ति और समाज भी काटकर गिरा दिये जाएँ।

उपन्यास में प्रारंभ से अंत तक रोचकता बनाए रखने में वर्मा जी को पूर्ण सफलता मिली है। चरित्र-चित्रण भी बहुत अच्छा हुआ है। प्रत्येक पात्र अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व रखता है, जो प्रारंभ से अंत तक नष्ट नहीं होने पाता। उपन्यास में आधुनिक भारतीय समाज की अनेक महत्वपूर्ण समस्याएँ उठाई गई हैं और उन पर गंभीरता से विचार किया गया है।

एक वाक्य में, 'अमरबेल' सन् पचास के बाद लिखे गये श्रेष्ठ उपन्यासों में एक है।

त्यागपत्र : एक मूल्यांकन

श्री जैनेंद्रकुमार वर्तमान समय के सर्वप्रसिद्ध उपन्यासकारों में अपना स्थान रखते हैं। यों तो उनके 'परख', सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'व्यतीत' तथा 'विवर्त' आदि कई उपन्यास निकल चुके हैं, लेकिन हमारी सम्मति में उनकी ख्याति सिर्फ 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' के कारण ही हैं, और ये ही दो उनके सबसे प्रसिद्ध उपन्यास हैं। यहाँ हम उनके 'त्यागपत्र' नामक उपन्यास का संक्षेप में मूल्याकंन करने की चेष्टा करेंगे।

'त्यागपत्र' कई दृष्टियों से एक अत्यंत उत्कृष्ट उपन्यास है—एक नवीन और सफल प्रयोग। उपन्यास का नायक है प्रमोद। उसमें अनेक बाल-सुलभ गुण हैं। अपने परिवार के व्यक्तियों में अपनी बुआ से ही उसकी अधिक पटती है। वह भी प्रमोद को अनुज की तरह मानती हैं। प्रारंभ में अपनी अत्यन्त कम अवस्था के कारण वह अपने घर के व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार को समझने में असमर्थ रहता है—विशेष रूप से अपनी बुआ के प्रति अपनी माँ के व्यवहार को। फिर भी वह जो कुछ देखता है, वह यह कि एक दिन उसकी माँ बुआ को कोठरी में बंद कर के बेंतों से मारती हैं और इस घटना के बाद जल्दी ही—पाँच-छै महीने के अन्दर—बुआ का विवाह कर दिया जाता है। वह अपनी ससुराल चली जाती है। प्रमोद इन घटनाओं को नहीं समझ पाता। उसे बुआ का अभाव बहुत खलता है, लेकिन चौथे ही रोज वह वापस आ जाती है।

इस बार आने पर बुआ कुछ खिन्न सी रहती हैं। एक बार वह एक पत्र भी प्रमोद के द्वारा भेजती हैं—अपनी सहेली शीला के भाई के पास।

जिसका जवाब प्रमोद फौरन लाकर दे देता है। लगभग इसी समय प्रमोद के पिता का तबादला हो जाता है। अब वह अपनी बुआ से काफी दूर चला जाता है। लगभग आठ-दस महीने बाद एक दिन बुआ एक नौकर के साथ बिना किसी पूर्व सूचना के सुसराल से चली आती हैं। घर में काफी उपद्रव मचता है। बुआ इस बार कुछ अजब सी, बहकी-बहकी बातें करती है। बात-चीत के सिलसिले में प्रमोद को मालूम होता है कि फूफा उसको बेंत से मारते हैं, जिसे सुनकर उसे बहुत आश्चर्य होता है। एक दिन फिर फूफा आते हैं और बुआ को बिदा करा ले जाते हैं।

अब तक प्रमोद अपने को काफी समझदार अनुभव करने लगता है। वह आठवें से नवें दर्जे में आता है फिर मैट्रिक पास करता है और आई० ए० भी पास कर लेता है। अब फिर उसे बुआ का ध्यान आता है। इस संबंध में वह अनेक जिज्ञासायें करता है, लेकिन उसके माँ बाप उसकी किसी बात का शंका-समाधान नहीं करते। बहुत दिनों बाद जो कुछ वह जान पाता है, वह यह कि उसकी बुआ दुश्चरित्र हैं और फूफा ने उन्हें छोड़ दिया है। प्रमोद की समझ में जो कुछ आता है, उसे जानकर वह संतोष कर लेता है।

एक बार वह अपनी बुआ का पता लगाकर जा पहुँचता है। एक अत्यंत गंदे मुहल्ले की भीतरी गली में बुआ की कोठरी थी। उनके साथ जो आदमी रहता था वह बनिया था और कोयले की दूकान करता था। उस समय उसने देखा कि बुआ का सारा सौंदर्य जा चुका था और उनका मुँह पीला पड़ चुका था। वह गर्भवती भी थीं। प्रमोद उन्हें अपनी पढ़ाई के बारे में बतलाता है। उसकी बुआ भी उसे अपने संबंध बतलाती है और शीला के बारे में भी। काफी देर बाद वह वहाँ से चला आता है।

घर आकर जब वह अपनी माँ से इस बात का जिक्र करता है तब वह बहुत नाराज होती हैं। वह फिलहाल विवाह करना अस्वीकार कर देता है, जो उसकी माँ की और भी नाराजगी का कारण होता है। एक दिन कालेज से वह फिर बुआ के यहाँ जाता है, लेकिन वह वहीं मिलतीं। उनकी खोज में वह अस्पताल जाता है लेकिन वहाँ भी कुछ पता नहीं लगता। अंत में वह निराश होकर वापस आ जाता है।

वह अपने विवाह के पूर्व लड़की देखने जाता है और दैवयोग से वहीं उसे अपनी बुआ मिल जाती हैं । वह एक बार चौंक सा जाता है लेकिन फिर भी अपनी बुआ के व्यवहार को समझने में असमर्थ रहता है। वह अपने ससुर को स्पष्ट बता देता है कि आपके यहाँ बच्चों को पढ़ाने वाली मेरी बुआ है। वह प्रकट रूप तो कुछ नहीं कहते लेकिन बाद में उसे यह मालूम हो जाता है कि उसकी सगाई वहाँ से छूट गई है। इसके बाद उसे बुआ का कोई पता नहीं चलता। हाँ, एक दिन उनका एक लम्बा पत्र उसे मिलता है। वह फौरन उनके ठिकाने पर जाता है, लेकिन बीमारी की हालत में भी वह उसके साथ वापस नहीं आतीं।

और इस घटना के सत्रह वर्ष बाद उसे अपनी उन्हीं बुआ की मृत्यु की सूचना मिलती है। उसकी आँखों के सामने वे सारी घटनायें चित्र के समान घूम जाती हैं और वह अपने वर्तमान पद—जजी से त्याग-पत्र दे देता है।

संक्षेप में, 'त्यागपत्र' की कथा का यही सारांश है। उपन्यास में जगह-जगह पर जीवन की अत्यंत मार्मिक, तीव्र, अनुभूतियों की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है। हमारे सामने उपन्यासकार तत्कालीन समाज की स्थिति का यथार्थ चित्रण उपस्थित करता है। 'त्यागपत्र' में एक बहुत महत्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न को उठाया गया है। उपन्यास की प्रमुख पात्री—प्रमोद की बुआ मृणाल—पाठक के सामने एक प्रभावशाली व्यक्तित्व लेकर आती है। उसकी अपनी हीनताओं के बावजूद भी पाठक उसका सम्मान करता है।

'त्यागपत्र' में अनेक स्थलों पर मार्मिकतापूर्ण उद्धरण मिलते हैं। हम जैसा कि कह चुके हैं, शैली की नवीनता और सफलता ही इस उपन्यास की भी सबसे बड़ी सफलता है। अपनी वृद्धावस्था में उपन्यास का पत्र प्रमोद अपने कुछ कार्यों पर पश्चाताप करता है। यद्यपि वह जीवन में अनेक सफलतायें प्राप्त कर चुका है और उन्हीं की बदौलत वह एक जज के प्रतिष्ठित पद पर पहुँचा है, लेकिन साथ ही वह यह भी अब अनुभव कर रहा है कि उसके जीवन में कुछ असफलताएँ रही हैं। उसे अपनी बुआ की मृत्यु पर शोक होता है। वह अकेले में उन्हीं के लिये चार आँसू बहाता है। वह

यह भली-भाँति जानता है कि यद्यपि समाज की आँखों में उसकी बुआ एक पतित स्त्री थी और उनसे संबंधित होने की बात आज उसके लिए अपमान का कारण बन सकती है, भले ही वह अपने चारों ओर प्रतिष्ठा की बड़ी-बड़ी मजबूत दीवारें खड़ी कर चुका था। वह यह भी जानता है कि कोई अपवाद इन्हें पार कर शायद ही उसके पास तक आ सके।

यद्यपि हम उसका अपनी बुआ के प्रति कोई ऐसा व्यवहार नहीं देखते, जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि उसने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया, लेकिन कुछ ऐसी बातें हैं जो उसे यह सोचने को मजबूर करती हैं, कि यदि वह अपनी जिद पर अड़ जाता तो क्या वह उनका उद्धार नहीं कर सकता था और उनको मृत्यु के मुँह से नहीं बचा सकता था। उसे वह दिन याद आता है जब उसकी वृद्धा बुआ सख्त बीमार थीं। उस समय वह स्वतंत्र और समर्थ था। उसने अपनी बुआ को अस्पताल के प्राइवेट वॉर्ड में भरती कराने का आग्रह भी किया था, लेकिन ऐसा करने में असफल रहा था।

यहाँ तक तो हम कह सकते हैं कि वह अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुआ, लेकिन इसके बाद वह अपनी वकालत में ऐसा चिपटा कि किसी बात के लिए उसकी आँखें न खुली रहीं, कुछ भी और न देख पाईं, सिवाय अपने स्वार्थ के। सत्रह वर्ष हो गये—अपनी बुआ के पास जाने की बात तो दूर उनकी खोज-खबर लेने तक का अवकाश उसे न मिल सका।

अब उसे अपने आप पर क्रोध आता है। वह सोचता है कि ऐसा क्यों हुआ ? उसकी बुआ की माँग उससे क्यों नहीं पूरी हुई ? उनके अपार प्रेम और विश्वास के बदले में उसने अपना सब धन क्यों नहीं बहा डाला ? क्यों उसकी मुट्ठी मिच गई ? और यदि ऐसा हुआ भी, तो उसके बाद उसकी आत्मा ताप से संतप्त क्यों नहीं हुई ?

और आज इन सब प्रश्नों के उत्तर में वह कहता है कि वह क्षुद्र था। वह वकालत में आँख गड़ा कर खुद फूलने में लगा रहा। वह यह मानता रहा कि वह ठीक रास्ते पर है। वह कर्तव्य को दबाता रहा और अकर्तव्य को करता रहा। क्यों ? क्योंकि वह बुद्धिमान था, मूर्ख नहीं। वह तोल-तोल कर चला और तराजू अपने हाथ में रखी। आज उसका हृदय पीड़ित है, क्योंकि जो असली

तराजू है उसमें वह हलका तुल रहा है। वह इस बात के लिए पछता रहा है कि अपने धन और प्रतिष्ठा की प्राप्ति के साथ-साथ वह क्यों थोड़ा सा मूर्ख नहीं बन सका। यह सब कुछ निस्सार है, क्योंकि वह समय पर प्रेम के प्रतिदान से चूक गया। आज उसे मालूम हो रहा है कि जो कुछ उसने बटोरा है, वह मैल है और उसकी आत्मा की ज्योति को ढक रहा है, जो वह नहीं चाहता। इस सबके पश्चाताप स्वरूप वह जर्जा से 'त्यागपत्र' देता है। और इस प्रकार एक तरह से अपनी मृत बुआ के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता है—उनके प्रेम और विश्वास का प्रतिदान देता है।

इस उपन्यास में एक पात्र और ऐसा है जिसके संबंध में कुछ कहना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि वास्तव मे मृणाल के सर्वनाश का अप्रत्यक्ष रूप में वही कारण है। वह पात्र है मृणाल की सखा शीला का भाई। विवाह के पूर्व इसी व्यक्ति के साथ अनुचित संबंध होने के कारण मृणाल का जीवन नरक बन जाता है। वैसे हम यह जानते हैं कि वह कई अर्थों में एक सच्चा प्रेमी है। वह मृणाल के दुर्भाग्य के लिए पूर्ण रूप से अपने को जिम्मेदार भी समझता है। वह मृणाल को एक पत्र लिखकर यह बताता है कि अब वह एक सि वल सर्जन है। शादी नहीं हुई है, न वह करेगा। वह मृणाल से यह भी प्रार्थना करता है कि यदि उसे कभी भी उसकी सहायता की ज़रूरत पड़े तो वह उसे निस्संकोच लिख दे। उसकी इन सब उच्च भावनाओं के बावजूद भो पाठक उसे दोषी समझता है। उसका सबसे बड़ा अपराध है, मृणाल को भ्रष्ट करना और इससे भो बढ़कर अपराध है उसे उसके दुर्भाग्य से मुक्त करने के लिए कोई भी प्रयत्न न करना।

जैनेंद्र जी सामान्यतया, प्रेमचंद के बाद, प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार माने जाते हैं, यद्यपि वह प्रेमचंद से काफी भिन्न हैं। चूँकि वह व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं, इसलिए उन्होंने उपन्यासों में (व्यक्तिगत) नैतिकता को काफी महत्व दिया है। जैनेंद्र जी में कुछ विशिष्ठ गुण मिलते हैं, यद्यपि ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि उनके उपन्यासों में कमियाँ नहीं हैं। उनकी कला और महत्व के संबंध में भी आलोचक एकमत नहीं हैं। यदि एक ओर लोग उन्हें शरत् और प्रेमचंद के समकक्ष मानते हैं तो दूसरी ओर अन्य आलोचक उनकी रचनाओं को अतृप्त और विकृत मस्तिष्क का परिणाम बताते हैं।

'त्यागपत्र' हमारी सम्मति में जैनेंद्र जी का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है—बहुत से मानों में 'सुनीता' से भी श्रेष्ठतर। हमारा विचार है कि शायद जैनेंद्र जी अपने बाद के उपन्यासों—'सुखदा', 'विवर्त' आदि—में वैसी प्रभावात्मकता नहीं ला पाए जो 'त्यागपत्र' में मिलती है। यही कारण है कि हम 'त्यागपत्र' को उनका सबसे सफल उपन्यास मानते हैं और हिंदी का सर्वश्रेष्ठ लघु उपन्यास।

मैला आँचल : एक मूल्यांकन

'मैला आँचल' श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' का प्रथम उपन्यास है। यह ऐसा सौभाग्यशाली उपन्यास है जो लेखक की प्रथम कृति होने पर भी उसे ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त करा दे कि वह चाहे तो फिर कुछ और न भी लिखे।' (–'आलोचना', १५····) 'मैला आँचल' गत वर्ष का ही श्रेष्ठ उपन्यास नहीं है, वह हिंदी के दस श्रेष्ठ उपन्यासों में सहज ही परिगणनीय है। स्वयं मैंने हिंदी के दस श्रेष्ठ उपन्यासो की जो तालिका प्रकाशित कराई है, उसमें उसे सम्मिलित करने में मुझे कठिनाई न होगी। मैं किसी द्विधा के बिना एक उपन्यास को हटाकर इसके लिए जगह बना सकता हूँ। बिना किसी प्रचार या विज्ञापन के ही 'मैला आँचल' हिंदी के उस विस्तृत क्षेत्र में तत्क्षण प्रसिद्ध हो गया, जिसमें अपवाद स्वरूप ही कोई पुस्तक इतनी शीघ्र ज्ञात होती है। मैंने इसे 'गोदान' के बाद हिंदी का वैसा दूसरा महान् उपन्यास माना है।' (—'आलोचना' १५),····हिंदी के उपन्यास-साहित्य में यदि गत्यवरोध था, तो इस कृति से वह हट गया है।' (–'आलोचना' १५),····प्रेमचंद ने 'गोदान' में जो परंपरा स्थापित की थी, जिसे नागार्जुन ने अपने आंचलिक उपन्यासों द्वारा आगे बढ़ाया, 'मैला-आँचल' निश्चय ही उस परंपरा का अगला कदम है और हिंदी उपन्यास-साहित्य में मील के पत्थर का स्थान रखता है।' (—'आलोचना' १५)····'सब मिलाकर हम कहना चाहेंगे कि 'मैला-आँचल' १६५४ की सर्वश्रेष्ठ हिंदी रचना है।' (—'आजकल,' सितम्बर, ५५) 'और, 'मैला-आँचल' नवीन शिल्प के चमत्कार का सबल प्रमाण है। लेखक हिंदी-कथा-साहित्य में बहुत बड़ी पूँजी लेकर आया है। उसे बहुत बातें कहनी हैं। उसकी दूसरी पुस्तक विश्व-उपन्यास की दृष्टि से भी कुछ मूल्य रखेगी।' (—'अवंतिका', जनवरी, ५६)।

ऊपर श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' के प्रथम उपन्यास 'मैला-आँचल' के संबंध में कुछ आलोचकों के—जिसमें से कई हिंदी के उच्च श्रेणी के साहित्यकार हैं—विचार यहाँ दिए गए हैं। ये उद्धरण कुछ अधिक और लंबे कहे जा सकते हैं, लेकिन हमने इन्हें इस रूप में इसीलिए उद्धृत किया है कि हम यह चाहते हैं कि उपर्युक्त विचारों के औचित्य पर भी एक दृष्टि डालना संभव हो। हमने, उक्त सम्मतियों अथवा समालोचनाओं को पढ़ने के बाद जब 'मैला-आँचल' पढ़ा, तब वह हमारी पूर्व आशा के अनुकूल नहीं साबित हुआ। हमें इसीलिये, इस उपन्यास के, उक्त समीक्षाओं-द्वारा निर्धारित किए गए, महत्व में आपत्ति है। और, यही कारण है कि हम यहाँ 'मैला-आँचल' पर अपने कुछ विचार प्रस्तुत करने के पूर्व उक्त आलोचनाओं पर एक निगाह डालना उचित समझते हैं। साथ ही, हमने 'मैला-आँचल' में से कोई उद्धरण यहाँ देने के बदले उसकी आलोचनाओं के अंश उद्धृत किए हैं। यह भी सिर्फ इसीलिए कि हमें उपर्युक्त विचारों से सहमति नहीं है।

अब हम उक्त सम्मतियों के एक-एक संकेत को क्रमशः लेंगे। पहली समीक्षा में यह कहा गया है कि यदि अब आगे रेणु जी कुछ भी न लिखें, तब भी यह उपन्यास उन्हें स्थायी प्रतिष्ठा प्राप्त करा देगा। जहाँ तक हमारे दृष्टिकोण का सवाल है, हम बाद में यह विचार करेंगे कि लेखक से भविष्य में क्या आशा की जा सकती है। अभी सिर्फ यह देखना है कि क्या 'मैला-आँचल' लेखक की स्थायी प्रसिद्धि के लिए पर्याप्त है या इसके लिए समर्थ है। हम समझते हैं कि अपने-आप में यह कृति इतनी सशक्त नहीं है। अपनी इस बात को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें। टाल्सटाय ने यदि सिर्फ 'एन्ना केरेनिना' या 'वार ऐंड पीस' ही लिखा होता, तो वह उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए पर्याप्त था, लेकिन प्रेमचंद के उपन्यासों में अकेला 'रंगभूमि' या 'गोदान' या शरत् के उपन्यासों में अकेला 'शेष प्रश्न' या 'चरित्रहीन' उन्हें महत्व की इस सीमा तक हरगिज न पहुँचा सकता। (हमें खेद है कि हम आगे विस्तार-भय से, इस प्रकार के उदाहरण देकर अपने विचारों का स्पष्टीकरण न कर सकेंगे।)

दूसरी बात है 'मैला आँचल' के सन् १९५४ के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास या हिंदी के दस श्रेष्ठ उपन्यासों में से एक होने की। हमें अफसोस है कि हम

उक्त दोनों बातों में से एक से भी सहमत नहीं हैं। हमें ठीक स्मरण नहीं है, लेकिन हमारा विश्वास कि सन् चौवन में इसके टक्कर के कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। वैसे, हमारा विचार है कि दूसरी स्थापना जो ऊपर की गई है—हिंदी के दस सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक होने की—वह महत्तर है। लेकिन, जैसा कि हम कह आए हैं, हमें इसमें भी संदेह है। यहाँ एक और बात की ओर हम संकेत करना चाहेंगे। किसी अत्यंत समृद्ध भाषा के साहित्य में दस श्रेष्ठ उपन्यासों का होना, उसके लिए गौरव की बात हो सकती है, फिर अभी हिंदी तो इतनी समृद्ध भाषा मानी भी नहीं जाती है—विश्व की अन्य समृद्ध भाषाओं की तुलना में। इसलिए, हमारी समझ में, हिंदी के दस सर्वश्रेष्ठ उपन्यास यदि चुनने ही हैं, तो हमें अपेक्षाकृत उच्चतर मानदंडों के अनुसार निर्णय करना होगा। लेकिन ऐसा न करके, अगर हम आधुनिक हिंदी-आलोचकों के दृष्टिकोण के अनुसार ही चलें, तो भी हमारा विचार है कि हिंदी में अब तक प्रकाशित दस सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में इस उपन्यास का नाम शायद नहीं आएगा। (हम जान-बूझकर यहाँ उन दस उपन्यासों के नाम नहीं दे रहे हैं, जिन्हें हम सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।)

ऊपर तीसरी महत्वपूर्ण स्थापना यह की गई है कि यह 'गोदान' के बाद हिंदी का वैसा दूसरा महान् उपन्यास है। यहाँ हमें फिर कुछ सोचने को मजबूर होना पड़ता है। प्रेमचंद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं, ऐसा अब तक लगभग सभी आलोचक मानते आए हैं और 'गोदान' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, इस संबंध में भी अधिक मतवैभिन्य नहीं है। तो जब किसी कृति को 'गोदान' की परंपरा में आने का महत्व मिलता है, तो स्वभावतः ही हमारे सामने कुछ प्रश्न आते हैं—क्या 'गोदान' की समता 'मैला आँचल' कर सकता है? क्या प्रेमचंद की कला की ऊँचाईयों तक 'रेणु' पहुँच सके हैं? प्रेमचंद एक समर्थ उपन्यासकार हैं और 'गोदान' उनकी प्रौढ़तम कृति है। और, यही कारण है कि उसे हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। दूसरी ओर 'मैला आँचल' 'रेणु' जी का सर्वप्रथम उपन्यास है। यहाँ यह कहना हमारा उद्देश्य कदापि नहीं है कि कोई उपन्यासकार अपनी पहली कृति इतनी प्रौढ़ नहीं बना सकता है और न यह ही कहना कि 'रेणु' जी अप्रौढ़ उपन्यासकार हैं। हमें सिर्फ 'मैला आँचल' के उतना अधिक महत्वपूर्ण होने में संदेह है, जितना कि 'गोदान' है। और, हम नहीं समझते कि

कथानक, भाषा, शैली, चरित्र-चित्रण, जीवन-दर्शन आदि में से किसी एक में भी 'मैला आँचल' 'गोदान' के समकक्ष ठहर सकता है।

अब हिंदी उपन्यास-साहित्य में गतिरोध का प्रश्न आता है। इस संबंध में हम कुछ भी अधिक न कहकर केवल इतना ही संकेत करना चाहेंगे कि हिंदी को जो श्रेष्ठ उपन्यास क्रमशः मिलते रहे हैं, उन्हें देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इस क्षेत्र में 'मैला आँचल' के प्रकाशन से पूर्व, गतिरोध की स्थिति उत्पन्न हुई थी।

अब सवाल है 'मैला आँचल' के हिंदी उपन्यास-साहित्य में मील के पत्थर होने का। हम अपने आपको यहाँ हिंदी के उन दस उपन्यासों के नाम लेने से बचा रहे हैं, जो हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में हैं और साथ ही मील के पत्थर भी। और, इसके साथ ही हमें यह भी आशंका है कि उससे शायद हमारे सभी पाठक सहमत नहीं होंगे। अतः हमको अपने कथन की सफाई में भी काफी कुछ कहना होगा, जो यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है। इसलिए फिलहाल हम इस प्रश्न को छोड़ते हैं।

इसके बाद हम यह देखना चाहेंगे कि 'रेणु' जी की अगली कृति क्या वास्तव में विश्व-उपन्यास-साहित्य में महत्वपूर्ण होगी। जब कभी हम विश्व-उपन्यास-साहित्य की चर्चा करते हैं, तब हमारी दृष्टि स्वभावतः ही उन उपन्यासकारों की ओर जाती है, जो विश्व-उपन्यासाकाश के जगमगाते सितारे हैं। आज हिंदी साहित्य में वह समय आ गया है, जब हमारे साहित्यकारों को अपने उत्तरदायित्व को भली-भाँति समझना और विश्व-साहित्य के विकसित मानदंडों के अनुसार अपनी दृष्टि का परिष्कार करना चाहिए। हमारी यह चर्चा काफी लंबी होती, लेकिन अभी हम हिंदी-उपन्यास-साहित्य में ही 'मैला आँचल' का उचित स्थान नहीं निर्धारित कर पाए हैं, अतः विश्व-उपन्यास-साहित्य में उसके स्थान-निर्धारण की बात उठाना शायद ठीक न होगा।

अंत में हम 'मैला आँचल' के महत्व के संबंध में अपनी दो बातें, बहुत ही संक्षेप में, चाहेंगे। हमारे विचार से जहाँ तक इस उपन्यास के गुणों-अवगुणों का सवाल है, यह उपन्यासकार का सर्वप्रथम उपन्यास होने के नाते एक आशाजनक प्रयत्न कहा जायगा। यह शैली की दृष्टि से किसी

उपन्यास की ('गोदान' आदि की) परंपरा का न होकर एक नया प्रयोग है—काफी सीमा तक एक सफल प्रयोग। साथ ही, लेखक को छोटी-छोटी मनोरंजक, लेकिन यथार्थ घटनाएँ इसमें समाविष्ट करने में भी सफलता मिली है, यद्यपि ये घटनाएँ उपन्यास के मूल कथानक से प्रत्यक्ष रूप में संबंधित नहीं है और इसी कारण इस उपन्यास की कथा में एकता नहीं रह सकी है। एक और विशेषता यह है कि उपन्यासकार ने स्वयं कुछ न कहकर अपने पात्रों अथवा चरित्रों के मुँह से सभी बातें कहलाई हैं। हाँ, प्रत्येक परिच्छेद में दर्जनों नए पात्रों का इंट्रोड्यूस होना अच्छा नहीं लगता। चरित्र-चित्रण अधिकांश पात्रों का काफी मनोवैज्ञानिक है, यद्यपि डाक्टर प्रशांत आदि पात्र सशक्त नहीं बन पड़े हैं। हमारा विचार है लेखक को एक विशेष प्रकार के पात्रों के चित्रण में ही सफलता मिली है और इस दृष्टि से इस उपन्यास में ऐसे अनेक चरित्र हमें मिल जाते हैं, जो बहुत सजीव हैं। बावनदास आदि पात्र तो पाठकों की काफी सहानुभूति प्राप्त करते है। जैसा कि हमने कहा, एक सुसंगठित कथा-तत्त्व की अप्रधानता इस उपन्यास की एक बहुत बड़ी कमी है। इसी प्रकार ग्राम्य, स्थानीय अथवा अपेक्षाकृत अप्रचलित शब्दों का बहुलता से प्रयोग भी खटकता है। बहुत से पात्र अनावश्यक भी जान पढ़ते हैं। उपन्यास काफी ऊब पैदा करनेवाला भी है।

हम अपना यह वक्तव्य यह कह कर समाप्त करते हैं कि यद्यपि 'मैला आँचल' अपने आप में एक बहुत सशक्त उपन्यास नहीं हैं, फिर भी हमें इस बात के लिए आशान्वित करता है कि भविष्य में उसका रचयिता, अपनी अधिक प्रौढ़ कृतियों का निर्माण करके हिंदी के प्रथम श्रेणी के उपन्यासकारों में आ सकता है।

हिंदी कहानी का विकास

कहानी का प्राचीनतम रूप ऋग्वेदों में मिलता है। उपनिषदों में भी बहुत से हितोपदेश तथा रूपक कथाएँ हैं। कादम्बरी, दशकुमार चरित आदि ग्रंथों की कथाएँ तो संस्कृत साहित्य में अमर हैं। हिंदी में कहानी साहित्य का प्रारंभिक रूप बृहत्कथा आदि में मिलता है। आधुनिक गद्य के प्रचार के साथ ही साथ आधुनिक कहानी का भी प्रारंभ हुआ। इन्शाअल्ला खाँ लिखित 'रानी केतकी की कहानी' हिंदी की सर्वप्रथम कहानी कही जाती है। इसके बाद लिखी गई कृतियों में 'सिंहासन बत्तीसी' (१८०१) 'बैताल पचीसी' (१८०५), 'माधवानंद कामकंदला' (१८०५), 'शकुन्तला' (१८०३), 'प्रेमसागर' (१८०१), और 'नासिकेतोपाख्यान,' आदि उल्लेखनीय हैं। ये सभी पुस्तकें उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में प्रकाशित हो चुकी थीं।

उपर्युक्त-कहानी साहित्य में तथा उपन्यास में बहुत कम भेद है। वैसे कहानी भी आधुनिक युग की देन समझी जाती है। प्रारंभ में संस्कृत के अतिरिक्त फारसी के प्रभाव स्वरूप भी हिंदी में 'लैला-मजनू,' 'शीरीं-फरहाद', 'किस्सए गुल-बकावली' आदि के ढंग पर ही 'किस्सा तोता मैना,' 'छबीली भटियारिन,' 'किस्सा साढ़े तीन यार,' 'एक रात में चालीस खून' आदि की रचना हुई। 'रानी केतकी की कहानी' की परवर्ती कहानियों में उसी ढंग पर लिखी गई—'राजा भोज का सपना' (शिवप्रसाद 'सितारे हिंद'), 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' (भारतेंदु हरिश्चन्द्र) आदि उल्लेखनीय हैं, लेकिन वास्तव में ये रचनाएँ मात्र कल्पना पर आधारित हैं, और कहानीपन इनमें कम है।

भारतेन्दु काल में गोपालराम गहमरी ने 'जासूस' नामक एक पत्रिका का

प्रकाशन प्रारंभ किया। इस पत्रिका में समय-समय पर अनेक छोटी-छोटी जासूसी कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं। किशोरीलाल गोस्वामी ने कहानीनुमा उपन्यास भी काफी लिखे। यही कारण है कि इस युग में रची गई कहानी तथा उपन्यास का भेद कम स्पष्ट है। किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा रचित 'इंदुमती' शीर्षक काहनी भी इसी युग में प्रकाशित हुई, जो शेक्सपीयर कृत 'टेंपेस्ट' पर आधारित कही जाती है।

आधुनिक हिंदी कहानी का जन्म वास्तविक अर्थों में प्रायः बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से माना जाता है, जिसमें अँग्रेजी तथा बंगला के प्रभाव के फलस्वरूप आधुनिक ढंग की कहानी लिखा जाना शुरू हुआ। सन् १६०० में 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ ही हिंदी में मौलिक कहानियाँ सामने आने लगीं। 'सरस्वती' में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित हिंदी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी 'इन्दुमती' (जून, १६००) में प्रकाशित हुई। इसी काल में शेक्सपीयर के कुछ नाटकों को कहानी रूप में लिखा गया तथा अनेक संस्कृत नाटकों ('रत्नावली', 'मालविकाग्निमित्र') तथा कथाओं ('कादम्बरी, आदि) को संक्षिप्त कहानी रूप देकर प्रकाशित किया गया। पार्वतीनंदन तथा बंगमहिला ने अनेक बँगला कहानियों का हिंदी में अनुवाद किया। बंगमहिमा की 'दुलाईवाली' (मई. १६००) शीर्षक कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। अब तक प्रायः कहानी और उपन्यास में कोई विशेष भेद नहीं समझा जाता था, लेकिन इस समय से उनका पारस्परिक अंतर स्पष्ट होने लगा। संवत् १६५७ से संवत् १६६४ तक 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी रचित 'इन्दुमती' (सं० १६५७) तथा 'गुलबहार' (सं० १६५६), मास्टर भगवानदास रचित 'प्लेग की चुड़ैल' (सं० १६५६), रामचंद्र शुक्ल रचित 'ग्यारह वर्ष का समय' (सं० १६६०), गिरिजादत्त वाजपेयी लिखित 'पंडित और पंडितानी' (सं० १६६०) तथा बंगमहिला लिखित 'दुलाई वाली' (सं० १६६४) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दस-पंद्रह वर्षों में आधुनिक हिंदी कहानी में तरह-तरह के प्रयोग किए गए। इस अवधि को इसीलिए आधुनिक हिंदी कहानी का प्रयोग-काल भी कहा जाता है। इन्हीं वर्षों में 'विद्या बहार' (विद्यानाथ शर्मा), तथा 'निन्यान्नबे का फेर' (मैथिली

शरण गुप्त) आदि कहानियाँ भी प्रकाशित हुई, जो उपदेशात्मक थीं। 'सुदर्शन' नामक मासिक पत्र में भी अनेक कहानीकारों की कहानियाँ निकलती रहीं जिनमें माधवप्रसाद मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। ये कहानियाँ काफी नया पन लिए हुए थीं। बंगमहिला की 'दुलाई वाली' (सन् १९०७) कहानी, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, भी एक श्रेष्ठ कहानी थी। स्वामी सत्यदेव तथा विश्वम्भरनाथ जिज्जा भी इसी काल में आते हैं। वृन्दावन लाल वर्मा की पहली कहानी 'राखीबन्द भाई' (सन् १९०७) तथा मैथिली शरण गुप्त की 'नकली किला' शीर्षक कहानी भी इसी काल में प्रकाशित हुई थी।

'इंदु' के प्रकाशन काल (सन् १९११) तक हिंदी कहानी सर्वथा नए मार्गों पर अग्रसर होने लगी थी। अब उसमें कल्पना, तिलस्म, रोमांस के स्थान पर यथार्थता की भावना स्पष्ट परिलक्षित होने लगी थी। 'इंदु' में 'प्रसाद' की सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' (सन् १९११) प्रकाशित हुई। गंगाप्रसाद श्रीवास्तव की 'पिकनिक' शीर्षक कहानी भी 'इंदु' में इसी वर्ष (सन् १९११) प्रकाशित हुई। लगभग इसी समय में चंद्रधरशर्मा 'गुलेरी' की 'सुखमय जीवन' शीर्षक कहानी 'भारत मित्र' में प्रकाशित हुई। 'प्रसाद' की दूसरी कहानी 'रसिया बालम' सन् १९१२ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। इसके प्रायः साथ ही साथ ज्वालाप्रसाद शर्मा की 'विधवा' शीर्षक कहानी प्रकाशित हुई। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की सर्वप्रथम कहानी 'रक्षा बंधन' सन् १९१३ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी सन् १९१५ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। इसके एक वर्ष बाद प्रेमचंद की सर्वप्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' जून १९१६ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई तथा इसके कुछ ही समय बाद 'आत्माराम' शीर्षक कहानी भी। 'सुदर्शन' की 'कमल की बेटी' शीर्षक कहानी भी उन्हीं दिनों छिपी।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हिन्दी में प्रेमचंद की सर्वप्रथम कहानी सन् १९१५ में प्रकाशित हुई थी। लेकिन इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि कहानी के क्षेत्र में उनका पदार्पण इसी वर्ष से हुआ था। वास्तव में प्रेमचंद ने कहानी-लेखन-कार्य सन् १९०० से प्रारंभ कर दिया था और इसी समय से उनकी कहानियाँ उर्दू में प्रकाशित होने लगी थीं। सन् १९०९

में उनकी पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजे वतन' के नाम से प्रकाशन हुआ। बाद में जब वह सरकारी नौकर हो गए तब नबाब राय के नाम लिखने लगे। लेकिन सरकार को इस बात की जानकारी होने पर 'सोजे वतन' की सभी प्रतियाँ जलवा दी गयीं। सन् १९१५ से वह निर्भीक होकर साहित्य-रचना में प्रवृत्त हो गए और उसके बाद आजीवन लिखते रहे। यों तो उन्होंने प्रायः सभी विषयों पर कहानियाँ लिखी हैं लेकिन विशेष रूप से उनकी कहानियों के विषय ग्राम्य-जीवन, मध्यवर्गीय शहरी समाज तथा भारतीय नारी समाज है। समाजिक के अतिरिक्त उन्होंने राजनैतिक तथा ऐतिहासिक कहानियाँ भी काफी लिखी हैं। मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से उनकी अनेक कहानियाँ अत्यंत उत्कृष्ट हैं।

कहानी-कला पर अपने विचार प्रकट करते हुए प्रेमचंद ने अपने कहानी संग्रह 'प्रेम-पीयूष' की भूमिका में लिखा है—'हम कहानी ऐसी चाहते हैं कि वह थोड़े से थोड़े शब्दों में कही जाय, उसमें एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक न आने पावे, उसमें कुछ चटपटापन हो, कुछ ताजगी हो, कुछ विकास हो और इसके साथ ही कुछ तत्व भी हो। तत्वहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो जाय, मानसिक तृप्ति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए मन के सुन्दर भावों को जागृत करने के लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं।' प्रेमचंद की स्वराज्य की कल्पना का परिचय उनकी 'आहुति' शीर्षक कहानी की एक पात्री के इस वक्तव्य से मिलता है—'अगर स्वराज्य आने पर भी संपत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा-लिखा आदमी यों ही स्वार्थान्ध बना रहे तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अँग्रेजी महाजनों की धनलोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर पर चढ़ाएगी कि वे विदेशी नहीं स्वदेशी हैं। कम से कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविंद बैठ जाय। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय मिल सके।' इसी प्रकार 'शांति' शीर्षक कहानी में प्रेमचंद की नारी-भावना का परिचय मिलता है, जहाँ उन्होंने लिखा है—'स्त्रियाँ केवल भोजन बनाने, बच्चा पालने, पति की सेवा करने और एकादशी का व्रत रखने के लिए नहीं हैं, उनके जीवन का लक्ष्य

इससे बहुत ऊँचा है। वे मनुष्यों के समस्त सामाजिक और मानसिक विषयों में समान रूप से भाग लेने की अधिकारिणी हैं। उन्हें मनुष्यों की भाँति स्वतंत्र रहने का भी अधिकार प्राप्त है।' प्रेमचंद ने तीन-चार सौ कहानियाँ लिखी हैं, जो 'मानसरोवर' (आठ भाग) में संगृहीत हैं। 'मानसरोवर' के अतिरिक्त 'सप्तसरोज,' 'नवनिधि,' 'समर यात्रा', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेम-पचीसी' 'कफन,' 'प्रेम द्वादशी,' आदि इनकी कहानियों के अन्य संग्रह हैं। प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर,' 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दारोगा', 'रानी सारंधा', 'मर्यादा की बेटी,' 'आहूति', 'कायर', निष्कासन,' 'अशांति', 'शंखनाद', 'अलग्योझा', 'मुक्ति मार्ग', 'बलिदान', 'पूस की रात', 'कफन', 'मावा का हृदय,' 'नशा,' 'बड़े भाई साहब', 'ऐक्ट्रेस', 'अग्नि समाधि', 'मैकू', 'जीवन-सार', 'ठाकुर का कुआँ,' 'शतरंज के खिलाड़ी', 'जलूस', 'आहुति', 'ईश्वरीय न्याय', 'ईदगाह,' 'विश्वास', 'काश्मीरी सेब,' 'प्रेरणा', 'बैंक का दीवाला', 'क्षमा', 'तगादा', 'दो कब्रें,' तथा 'मुक्ति धन', आदि कहानियाँ उनकी श्रेष्ठ और प्रतिनिधि कहानियों में गिनी जाती हैं।

जयशंकर 'प्रसाद' ने 'इन्दु' के प्रकाशन काल से ही कहानियाँ लिखना प्रारंभ कर दिया था। वह बहुमुखी प्रतिभा वाले साहित्यकार थे। उन्होंने प्रायः सामाजिक और ऐतिहासिक कहानियाँ ही अधिक लिखी हैं। उनकी कहानियों में वातावरण का सजीव चित्रण मिलता है और भाषा-शैली की दृष्टि से वे बेजोड़ होती हैं। उनकी कहानियों में भारतीयता की अमिट छाप है। उन्होंने कुल लगभग सत्तर कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें प्रथम 'ग्राम' तथा अंतिम 'सालवती' हैं। उनकी कहानियों के संग्रह 'छाया', 'प्रतिध्वनि,' 'आकाशदीप', 'आँधी,' तथा 'इंद्रजाल' आदि हैं। उनकी श्रेष्ठ कहानियों में 'आकाशदीप', 'देवदासी', 'मधुआ,' 'पुरस्कार', 'सलीम', 'नूरी' 'सालवती', 'दुखिया', 'भिखारिन,' 'अपराधी', 'बेड़ी,' 'छोटा जादूगर', 'चूड़ीवाली,' 'स्वर्ग के खंडहर में,' 'अपराधी', 'बिसाती', 'दासी', परिवर्तन', 'बिरागी', 'चित्रवाले पत्थर,' 'प्रणय चिह्न,' 'चित्र मंदिर', 'गुंडा,' 'घीसू', 'ग्राम गीता,' 'व्रतभंग,' तथा 'बनजारा' आदि की गणना की जाती है।

श्री चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' मुख्यतः कहानीकार नहीं थे। यह संस्कृत के पंडित तथा हिंदी के सफल गद्यकार थे। इन्होंने तीन कहानियाँ लिखीं—'सुखमय जीवन,' 'बुद्धू का काँटा' और 'उसने कहा था'। इनमें से अंतिम

हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जाती है, जो इस काल की कहानी कला का उत्कृष्टतम उदाहरण है। इसके संबंध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है—'संस्कृत के प्रकांड प्रतिभाशाली विद्वान्, हिंदी के अनन्य आराधक श्री चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' सं० १९७२ अर्थात् सन् १९१५ की 'सरस्वती' में छपी थी। इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्य्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुटित है। घटना इसकी ऐसी है, जैसी बराबर हुआ करती है पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है—केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विवृति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।'

रायकृष्ण दास की लिखी हुई कहानियाँ 'सुधांशु' और 'अनाख्या' नामक दो संग्रहों में संगृहीत हैं। इनकी कहानियों के विषय समाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक ही हैं। 'गहूला', 'प्रसन्नता की प्राप्ति', 'नर राक्षस' 'अंतःपुर का आरंभ' 'एथेन्स का सत्यार्थी,' तथा 'भय का भूत' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' मुख्यतः उपन्यासकार हैं, लेकिन इन्होंने कहानियाँ भी काफी लिखी है। और हमारी सम्मति में इन्हें अपने उपन्यासों से अधिक कहानियों में ही सफलता मिली है। 'नंदन निकुंज' तथा 'वनमाला' आदि इनके कहानी-संग्रह हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' भी प्रेमचन्द की तरह प्रारंभ में उर्दू में लिखते थे और बाद में हिंदी में आए। इनकी सर्वप्रथम कहानी 'रक्षा बंधन' (सन् १९१३) थी, जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इनका कहानी लिखने का ढंग बहुत सादा है और कहानियों का विषय प्रायः सामाजिक समस्याएँ ही हैं। इन्होंने कई सौ कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें से कुछ 'कल्प मंदिर,' 'मणिमाला' तथा 'चित्रशाला' में संगृहीत हैं। इनकी 'ताई' शीर्पक कहानी बहुत प्रसिद्ध है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव भी प्रायः उपन्यासकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानियाँ 'आशीर्वाद' नाम के संग्रह में संगृहीत हैं। कहानीकार 'सुदर्शन' भाषा-शैली की दृष्टि से प्रेमचन्द के सबसे अधिक निकट हैं। उनकी सर्वप्रथम कहानी 'हार की जीत' (सन् १९२०) थी, जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इनकी लिखी हुई कहानियाँ भी संख्या में बहुत अधिक हैं। 'सुदर्शन सुधा'

'सुप्रभात', 'सुदर्शन सुमन', 'तीर्थ यात्रा', 'चार कहानियाँ', 'पुष्प लता', 'गल्प मंजरी', 'परिवर्तन', 'पनघट', 'नगीना' आदि आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। इनकी दो कहानियाँ 'हार की जीत' और 'कवि की स्त्री' काफी प्रसिद्ध हैं। जैसा कि हमने कहा, भाषा-शैली की दृष्टि से तो यह प्रेमचन्द के बहुत निकट हैं ही, विषय की दृष्टि से भी इन दोनों कहानीकारों में काफी समानता है।

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह की कहानी 'कानों के कँगना' उनकी प्रतिनिधि कहानी है और कदाचित् सर्वश्रेष्ठ भी। यह कहानी सन् १९१३ में 'इंदु' में प्रकाशित हुई थी। इनकी 'बिजली' शीर्षक कहानी भी काफी प्रसिद्ध है। ज्वालादत्त शर्मा की पहली कहानी सन् १९१४ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इनकी 'विधवा' और 'दर्शन' कहानियाँ अधिक प्रसिद्ध हैं। चतुरसेन शास्त्री ने काफी कहानियाँ लिखी हैं। भाषा में ओज और चमत्कार की दृष्टि से इनकी कहानियाँ प्रसाद की कहानियों की समता कर सकती हैं। इनकी पहली कहानी सन् १९१४ में 'गृहलक्ष्मी' में प्रकाशित हुई थी। 'अक्षत' तथा 'रजकण' आदि इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं 'पान वाली', 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'जीजा जी', 'ककड़ी की कीमत,' 'दे खुदा की राह पर' तथा 'खूनी' आदि इनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। बदरीनाथ भट्ट मुख्यतः हास्य कहानियाँ लिखते थे। 'मुन्सिफ साहब की मरम्मत' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी समझी जाती हैं। शिवपूजन सहाय ने कहानियाँ कम ही लिखी हैं, लेकिन जो लिखी हैं, उनमें काफी प्रौढ़ता है। 'कहानी का प्लाट' इनकी सुन्दर कहानी है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी पहले निबन्ध लेखक हैं, बाद में कहानीकार। इन्होंने १९१७ से कहानी लिखना प्रारम्भ किया था। इनकी पहली कहानी उसी वर्ष 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। 'कमलावती', 'अदृष्टवाद', 'धर्म रहस्य' तथा 'गूँगी' आदि इनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की पहली कहानी सन् १९१८ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। उनकी लिखी हुई 'गोई जीजी' कहानी सुन्दर है। गोविन्द बल्लभ पंत की सर्वप्रथम कहानी सन् १९१९ में प्रकाशित हुई थी। यह मुख्यतः उपन्यासकार हैं। इनकी लिखी हुई कहानियों में 'जूठा आम', 'मिलन मुहूर्त', 'तैमूरलंग' तथा 'सबसे बड़ा रत्न' आदि प्रसिद्ध हैं। पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने विभिन्न शैलियों में कहानियाँ लिखी हैं। 'कला का पुरस्कार', 'जल्लाद', 'मोको चूनरी की साध', 'प्यारे', 'पंडुआ', 'कुमुदिनी', 'खुदाराम', 'उसकी माँ', 'भुनगा', 'चाँदनी' तथा 'दोजख की आग' आदि उनकी श्रेष्ठ

कहानियाँ समझी जाती हैं। 'इंद्रधनुष', 'दोजख की आग', तथा 'बलात्कार' इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

विनोदशंकर व्यास का नाम भी प्रतिनिधि कहानीकारों में आता है। इन्होंने कुछ मौलिक कहानियाँ तो लिखी ही हैं साथ ही 'मधुकरी' (दो भाग) के नाम से हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों का संकलन प्रकाशित किया है, जो इनका बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। 'कल्पनाओं का राजा' इनकी प्रतिनिधि कहानी समझी जाती है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' मुख्यतः कवि हैं। इनकी लिखो कहानियों की संख्या कम ही है। 'चतुरी चमार' इनकी प्रसिद्ध कहानियों में मानी जाती है। वृन्दावनलाल वर्मा सबसे पहले उपन्यासकार हैं, फिर नाटककार और अन्त में कहानीकार। इनकी लिखी कहानियाँ 'शरणागत' तथा 'कलाकार का दंड' नामक संग्रहों में उपलब्ध हैं। उपेन्द्र नाथ 'अश्क' प्रसिद्ध कहानीकार हैं। यह भी प्रारम्भ में उर्दू में लिखते थे— प्रेमचन्द के समान ही। जब इन्होंने हिन्दी साहित्य में पदार्पण किया, तब तक यह उर्दू में एक श्रेष्ठ कथाकार के रूप में से प्रसिद्ध हो चुके थे। हिंदी में इनकी सबसे पहली कहानी सन् १९३३ में प्रकाशित हुई थो। इन्होंने सामाजिक कहानियाँ ही मुख्यतः लिखी हैं। इनकी कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'डाची', 'कांकड़ा का तेली', 'गोखरू', 'बच्चे', 'कैप्टेन रशीद', 'बैंगन का पौधा', 'एरोमा', 'दो आने की मिठाई', 'चपत', 'रसपान', 'पत्नी व्रत' तथा 'पिंजरा' आदि इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ कही जाती है। राहुल सांकृत्यायन मुख्यतः उपन्यासकार तथा विचारक हैं। यों इन्होंने सामाजिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर भी कहानियाँ लिखी हैं। भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने एक उपन्यासकार के रूप में ही अधिक ख्याति पाई है। इनकी लिखी हुई कहानियों का 'दीपमालिका' नामक संग्रह काफी प्रसिद्ध है। इन की 'मिठाईवाला' शीर्षक कहानी काफी लोकप्रिय है। इलाचन्द्र जोशी भी उपन्यासकार के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी लिखी हुई कहानियों की संख्या भी काफी है, जो 'आहुति' और 'दीवाली', 'रोमांटिक और छाया', 'ऐतिहासिक कथाएँ', तथा 'होली' आदि में संग्रहों में संगृहीत हैं।

जैनेंद्रकुमार प्रेमचन्द के बाद दूसरे बड़े कहानीकार समझे जाते हैं। इन्होंने अनेक विषयों पर बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं, जिनका महत्व निर्विवाद है। इधर उनकी समस्त कहानियाँ 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' (सात भाग)

के अन्तर्गत प्रकाशित हुई हैं। इनमें से पहले में राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी कहानियाँ, दूसरे में बाल-मनोविज्ञान और वात्सल्य की कहानियाँ, तीसरे में दार्शनिक और प्रतीकात्मक कहानियाँ, चौथे में प्रेम और विवाह सम्बन्धी कहानियाँ, पाँचवे में प्रेम के विविध रूपों की कहानियाँ, छठे में विविध सामाजिक समस्याओं की कहानियाँ और सातवें में अन्य महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। कृष्णानन्द गुप्त की 'जलधारा', वाचस्पति पाठक की 'सूरदास', जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' की 'दुखिया', धनीराम 'प्रेम' की 'बहन', दुर्गादत्त त्रिपाठी की 'तीन भिखारी', चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार की 'एक सप्ताह', प्रफुल्लचन्द ओझा 'मुक्त' की 'दो दिन की दुनिया', सुमित्रानन्दन पन्त की 'बन्नू', परिपूर्णानन्द वर्मा की 'दो बूँद', वीरेश्वरसिंह की 'माया', 'भारतीय', की 'मुनमुन', ज्ञानचन्द जैन की 'मनुष्य का मूल्य' आदि कहानियाँ भी प्रसिद्ध हैं। भगवतीचरण वर्मा की कहानियाँ भाषा, शैली और भाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। 'दो बांके' और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं। द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' कहानियाँ पूर्ण चित्रण से युक्त और इसी कारण महत्वपूर्ण होती हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी की कहानियाँ चरित्र-प्रधान होती हैं। श्रीराम शर्मा ने शिकार सम्बन्धी रोचक कहानियाँ लिखी हैं। गुलाबराय ने कुछ हास्य-कथाएँ लिखी हैं। अन्नपूर्णानन्द की कुछ कहानियाँ श्रेष्ठ है। रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' ने मध्यवर्गीय जीवन पर बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं, जो कई संग्रहों में संगृहीत हैं। जी० पी० श्रीवास्तव हास्य-कहानी-लेखकों में अपना अलग स्थान रखते हैं।

यशपाल अपने ढंग के कहानीकारों में काफी ऊँचे ठहरते हैं। उनकी कहानियाँ 'अभिशप्त', 'वो दुनिया', 'ज्ञान दान', 'पिंजरे की उड़ान', 'तर्क का तूफान' 'भस्मावृत चिनगारी', 'फूलों का कुर्ता', 'धर्मयुद्ध', 'उत्तराधिकारी', 'चित्र का शीर्षक', तथा 'तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ' आदि संग्रहों में संगृहीत हैं। सियारामशरण गुप्त की 'काकी' शीर्षक कहानी हृदय को छूनेवाली है। मोहनलाल महतो 'वियोगी' की कहानियों में 'पाँच मिनट' विशेष उल्लेखनीय है। अमृतलाल नागर का तीखी लेकिन हास्य-व्यंगपूर्ण कहानी लिखने वालों में विशिष्ट स्थान है। ऋषभचरण जैन की कहानियाँ 'बिखरे मोती' नामक संग्रह में उपलब्ध हैं। भगवतशरण उपाध्याय के 'सबेरा', 'संघर्ष' तथा 'गर्जन' आदि कहानी संग्रह प्रसिद्ध हैं। रामचन्द्र तिवारी ने कुछ वैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। हरिशंकर शर्मा, रांगेय राघव, अमृत राय, चौधरी तेज-

बहादुर सिंह, हंसराज रहबर, विष्णु प्रभाकर, गंगाप्रसाद मिश्र, मोहनसिंह सेंगर, प्रभाकर माचवे, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', आरसीप्रसाद सिंह आदि के नाम अन्य कहानीकारों में विशेष उल्लेखनीय हैं।

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आधुनिक कहानीकारों में महत्वपूर्ण हैं। 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात' तथा 'जयदोल' में इनकी कहानियाँ संगृहीत हैं। धर्मवीर भारती की कहानियाँ 'चाँद और टूटे हुए लोग' में संगृहीत है। अन्य कहानीकारों में बलवन्त सिंह, राजेंद्र यादव, नरेश मेहता, मन्मथनाथ गुप्त, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि उल्लेखनीय हैं। कमल जोशी की कहानियों के तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'पत्थर की आँख', तथा 'चार के चार' में अपेक्षाकृत प्रौढ़ कहानियाँ हैं। नलिनविलोचन शर्मा की 'विष के दाँत' शीर्षक कहानी सुन्दर है। शिवप्रसाद मिश्र की कहानियाँ 'बहती गंगा' में संगृहीत हैं। ब्रजमोहन वर्मा, अन्नपूर्णानन्द, हरिशंकर शर्मा केशवचन्द्र वर्मा, कर्तारसिंह दुग्गल, कृष्णचंद्र, राधाकृष्ण आदि का नाम उल्लेखनीय है।

स्त्री कहानी लेखिकाओं में सुभद्राकुमारी चौहान, होमवती देवी, शिवरानी देवी, कृष्णा सेवती, कमला चौधरी, सावित्री निगम, उषादेवी मित्रा, सत्यवती मल्लिक, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी ने कौन सी दिशाएँ ग्रहण की हैं तथा हिंदी की नई कहानी की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ क्या हैं, उपर्युक्त कहानीकारों की कृतियों का अध्ययन करने से इसका आभास मिल सकता है।

---

*

आधुनिक हिंदी एकांकी

हिंदी में एकांकी का इतिहास बीस वर्षों से अधिक पुराना नहीं है। लेकिन इतनी छोटी अवधि में ही इसने हिंदी के नाटक-साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। यों तो हिंदी साहित्य में एकांकी का प्रादुर्भाव भारतेंदु के समय से माना जाता है (तथा बाद में भी कुछ प्रहसन आदि लिखे जाते रहे,) किंतु उन्हें एकांकी कहना ठीक नहीं। वे केवल पढ़ने के लिए लिखे जाते थे, खेलने के लिए नहीं। इस प्रकार के एकांकी लेखकों में भारतेंदु, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र आदि प्रमुख हैं।

वास्तव में हिंदी में एकांकी का प्रारंभ प्रसाद के 'एक घूँट' से हुआ है। 'एक घूँट' बड़ा तीखा एकांकी है। इसका एक उदाहरण देखिए—'असंख्य जीवनों की भूलभुलैया में अपने चिरपरिचित को खोज निकालना और किसी शीतल छाया में बैठकर एक घूँट पीना और पिलाना—प्रेम का एक घूँट ! बस इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।' प्रसाद के 'एक घूँट' के साथ जो एकांकी प्रकाशित हुए तथा उसके पश्चात् जो प्रमुख एकांकीकार हुए उनकी कृतियां तथा कला का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

सन् १९३५ में श्री भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवाँ' के प्रकाशन के साथ ही एकांकी का एक नया युग प्रारंभ हुआ। श्री भुवनेश्वर प्रसाद ने अपने एकांकियों में कई समस्याओं पर विचार किया है। ये समस्याएँ राजनीति तथा समाज से संबंधित हैं। इन एकांकियों पर पाश्चात्य विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'कारवाँ' एकांकी-संग्रह में छः एकांकी हैं—(१) 'श्यामा', (२) 'एक साम्यहीन साम्यवादी', (३) 'शैतान', (४) 'प्रतिमा

का विवाह', (५) 'रोमांस : रोमांच' और (६) 'लाटरी'। इनमें से 'श्यामा' में वैवाहिक विडंबना का चित्र है। 'एक साम्यहीन साम्यवादी' में उस व्यक्ति की झाँकी है जो धनिकों का सा जीवन बिताता है और साम्यवाद के लिए प्रयत्न करता है।

'शैतान' पर बर्नार्ड शा के 'डेवल्सि डिसाइपिल्स' (Devils Diciples) का स्पष्ट प्रभाव है। इसे एकांकीकार ने स्वयं भी स्वीकार किया है— '....लिखने के बाद मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे 'शैतान' के एक सीन में 'शा' की छाया तनिक मुखर हो गई है, मैं इसे स्वीकार करता हूँ।' 'प्रतिमा का विवाह' एकांकी में विवाह और प्रेम का यथार्थ विरोध प्रकट किया गया है। 'रोमांस : रोमांच' में सुधारवादी पाखंड पर आघात किया गया है तथा 'लाटरी' में घटनाओं और वाक्-वैदग्ध का सम्मिलन है। श्री भुवनेश्वर प्रसाद का एक और एकांकी बहुत प्रसिद्ध है—'ऊसर'। इसके संबंध में प्रो० अमरनाथ गुप्त ने लिखा है—'ऊसर' इनकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें इनका दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक है। आधुनिक मनोविज्ञान की फैलती हुई शाखाओं का यह साहित्यिक रूप है। लेखक पर पश्चिमीय मनोवैज्ञानिक फ्रायड के मग्नचेतन (Unconscdlious) के सिद्धांत का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। 'साइकोएनालेसिस' की सत्यता से कलाकार ने अपने कथानक की सृष्टि की है। लेखक का दृष्टिकोण 'Objective' है। लेखक 'ऊसर' के ट्यूटर के रूप में ही आधुनिक भारतीय समाज की आलोचना एक Discourse Age का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है।....'

इसके बाद डा० रामकुमार वर्मा का नाम आता है। यह हिंदी में एकांकी के जन्मदाताओं में से एक हैं। इनके प्रारंभिक एकांकी प्रसाद के 'एक घूँट' के साथ ही लिखे गए थे। इनका सर्वप्रथम एकांकी 'बादल की मृत्यु' है जो सन् १९२७ में लिखा गया था। इस एकांकी में कथानक का प्रायः अभाव ही है। हाँ इसके बाद जिन एकांकियों की रचना इन्होंने की, उनमें एकांकी के गुणों का क्रमशः विकास होता गया। सन् १९३६ में इनका पहला एकांकी-संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखे' प्रकाशित हुआ। इसमें छः एकांकी हैं—(१) 'चंपक', (२) 'ऐक्ट्रेस', (३) 'नहीं का रहस्य', (४) 'बादल की मृत्यु', (५) 'दस मिनट' और (६) 'पृथ्वीराज की आँखें'। उनका दूसरा एकांकी-संग्रह 'रेशमी टाई' सन् १९४१ में प्रकाशित हुआ, इसमें पाँच एकांकी

हैं—(१) 'परीक्षा', (२) 'रूप की बीमारी', (३) '१८ जुलाई की शाम', (४) '१ तोले अफीम की कीमत' और (५) 'रेशमी टाई'। इस संग्रह के एकांकियों में हास्य का अच्छा समावेश हुआ है। 'चारुमित्रा' डा० रामकुमार वर्मा का तीसरा एकांकी संग्रह है जिसमें उनके १६४१-४२ में लिखे गये चार एकांकी हैं—(१) 'चारुमित्रा', (२) 'उत्सर्ग', (३) 'रजनी की रात' और (४) 'अंधकार'। इस संग्रह के संबंध में श्री रामनाथ 'सुमन' ने लिखा है—'चारुमित्रा' सभी दृष्टियों से रामकुमार जी के एकांकी नाटकों का अपूर्व संग्रह है। इसमें संगृहीत प्रथम नाटक 'चारुमित्रा' की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक, 'रजनी की रात' की सामाजिक और शेष दो 'उत्सर्ग' तथा 'अंधकार' की दार्शनिक है।.... 'उत्सर्ग' और 'अंधकार' हिंदी नाटक में नए प्रयोग हैं और रामकुमार जी की मौलिक प्रतिभा ने इस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन का जो साहस किया है, मैं उसका अभिनन्दन करता हूँ। रामकुमार जी की नाट्य-कला में मधुर कल्पनाओं का एक जीवित लोक संचरित है। वे मानवता के पक्ष को उत्तेजित ही नहीं करते, उसके हार्दिक अनुबंधों की घुण्डी खोल देते हैं। वे हृदय को छूते हैं और रस टपकने लगता है। 'चारुमित्रा' के बाद उनके कई एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें पहला 'विभूति' है। इस संग्रह के सभी एकांकी ऐतिहासिक हैं। 'सप्त किरण', 'कौमुदी महोत्सव' तथा 'रजत रश्मि में पाँव' उनके नए एकांकी संग्रह हैं।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर पुराने एकांकीकारों में से हैं। उनके एकांकियों का संग्रह 'भोर का तारा' है। जिसमें उनके १६३४ से ४३ तक के बीच में लिखे गए एकांकी संगृहीत हैं। उन्होंने यद्यपि अधिक एकांकियों की रचना नहीं की है, किंतु जो लिखे हैं वे उच्च कोटि के हैं। इनका नया एकांकी-संग्रह 'ओ मेरे सपने' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसका अच्छा स्वागत हुआ है। 'भोर का तारा' तथा 'रीढ़ की हड्डी' इनके दो प्रसिद्ध एकांकी हैं।

सेठ गोविंददास के तीन एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—(१) 'सप्त रश्मि', (२) 'एकादशी' और (३) 'पंचभूत'। 'सप्तरश्मि' में सात एकांकी हैं—(१) 'धोखेबाज', (२) 'कंगाल नहीं', (३) 'वह मरा क्यों', (४) 'अधिकार-लिप्सा', (५) 'ईद और होली', (६) 'मानव-मन' तथा (७) 'मैत्री'। 'एकादशी' में ग्यारह एकांकी हैं जिनमें (१) 'सच्चा धर्म', (२) 'बाजीराव की तस्वीर', (३) 'सच्ची पूजा', (४) 'प्रायश्चित', (५)

'भय का भूत', (६) 'अजीबो गरीब', (७) 'मुलाकात' आदि मुख्य हैं। तीसरे संग्रह 'पंचभूत' में पाँच एकांकी हैं—(१) 'जालौक और भिखारिणी', (२) 'चन्द्रापीड़ और चर्मकार', (३) 'शिवाजी का सच्चा स्वरूप', (४) 'निर्दोष की रक्षा' और (५) 'कृष्ण कुमारी'। सेठ जी के संबंध में डा० सत्येन्द्र ने लिखा है—'संयम इस नाटककार का बड़ा गुण है। नाटकों की टेकनीक में संयम है। वह घोर कलावादियों की तरह एकांकियों के अपने निजी सौंदर्य की ओर उग्रता से अग्रसर नहीं है। उसने नाटक की टेकनीक को अपने संयम के घेरे में ले लिया है। समस्याएँ उपस्थित करने में संयम है। क्रांति की बात सोचते-सोचते और कहते-कहते जैसे रुक-सा जाता है। आवेश आता है पर दबकर, कहीं तो वह आदत होकर आता है। तर्कों में नवीन प्रणाली की ओर आकर्षित होते हुए भी वह प्राचीन दृष्टांतों से भाराक्रांत हो उठे हैं। शब्दों में इतना परिमार्जन और वाक्यों में ऐसी व्यवस्था भी संयम का परिणाम है।'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का पहला एकांकी 'पापी' सन् १६३७ में 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुआ था। इनके एकांकियों का दृष्टिकोण प्रायः सामाजिक ही है। इनके तीन एकांकी-संग्रह—(१) 'देवताओं की छाया में', (२) 'तूफान से पहले' तथा (३) 'चरवाहे' प्रकाशित हो चुके हैं। डा० नगेंद्र ने इनके नाटकों के संबंध में लिखा है—'इनके नाटकों का क्षेत्र प्रायः पंजाब का साधारण मध्यवर्ग है, जिसके भोगव्यस्त जीवन में प्रायः नाति-गहन सामाजिक समस्याएँ उठती हैं—जैसे विवाह की उलझन, पारिवारिक दायित्व के प्रश्न, जो ज्यादा बुनियादी मामले नहीं हैं। इन समस्याओं को लेखक ने छूकर छोड़ दिया है। उनका विवेचन और समाधान नहीं किया। परन्तु इन सीमाओं का निर्देश कर देने के बाद अपनी परिधि में अश्क की सफलता अत्यन्त स्पष्ट है।'

श्री उदयशंकर भट्ट का पहला संग्रह 'अभिनव हिंदी एकांकी' सन् १६४० में प्रकाशित हुआ था। 'समस्या का अन्त', 'चार एकांकी नाटक' तथा 'अस्तोदय' आदि अन्य एकांकी-संग्रह हैं। इनके नाटक अधिकतर दुखांत हैं। इनकी कला के संबंध में प्रो० अमरनारायण ने लिखा है—'इनके नाटक हिंदी साहित्य में एक नवीन शैली के परिचायक हैं, जिसका अभाव हमारे यहाँ अवश्य था। दुःखपूर्ण नाटक (Tragedy) लिखने की प्रथा आपने

ही चलाई। 'प्रसाद' जी के नाटकों में दुःखवाद खूब देखने को मिलता है, पर इनका तो दृष्टिकोण ही Tragic है।'

श्री विष्णुप्रभाकर ने सन् १९३९ में एकांकी लिखना प्रारम्भ किया था। तब से अब तक उनके अनेक एकांकी प्रकाशित हो चुके हैं। 'इंसान और अन्य एकांकी' उनका एकांकी-संग्रह है। यह रेडियो नाट्यशिल्प की दृष्टि से कुशल हैं। डा० सत्येन्द्र ने इनके एकांकियों के सम्बन्ध में लिखा है—'·······इनके एकांकियों की कथावस्तु वर्तमान युग की ही है, और किसी न किसी सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्या से संबंध रखती है, और उसमें से ही मानवता के भाव के तिरस्कार का तिरस्कार और आदर का आदर एकांकीकार दृश्यान्वित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री विष्णु में प्रेमचन्द जी का हृदय जाग्रत है। वे मनुष्य के मानवीय गुणों में विश्वास करते हैं, और उन्हीं से अभिभूत हैं।········'

प्रो० प्रेमनारायण टंडन प्रौढ़ एकांकीकारों में हैं और दस-बारह वर्षों से एकांकी लिख रहे हैं। आपके चार एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'प्रेरणा', 'संकल्प', 'कर्म-पथ', तथा 'दिवा-स्वप्न'। प्रकाशन की दृष्टि से 'प्रेरणा' प्रथम एकांकी संग्रह है, जिसमें 'माता', 'प्रेमी', 'कनवेसिंग', 'प्रेरणा' तथा 'बचपन के साथी' शीर्षक एकांकी हैं। इनमें से प्रथम दो अनुवादित हैं तथा शेष मौलिक हैं। यह संग्रह सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ था। इसके एक वर्ष बाद सन १९४६ में लेखक का दूसरा एकांकी-संग्रह 'संकल्प' प्रकाशित हुआ, जिसमें 'अधूरा लेख', 'संकल्प' तथा 'गांधार-पतन' शीर्षक तीन एकांकी हैं, जिनमें अंतिम ऐतिहासिक है तथा प्रथम और द्वितीय सामाजिक। 'संकल्प' के प्रकाशन के पाँच वर्ष बाद सन् १९५० में लेखक का तीसरा संग्रह 'कर्मपथ' प्रकाशित हुआ, जिसमें 'कर्मपथ', 'रोगी के बच्चे' 'लेखक की पत्नी' तथा 'दंड' शीर्षक चार एकांकी हैं। 'दिवा-स्वप्न और अन्य एकांकी' लेखक का नवीनतम एकांकी-संग्रह है, जिसमें 'उपहार', 'श्रम-दान', 'कृष्ण-जन्म' तथा 'दिवा-स्वप्न' शीर्षक एकांकी हैं। उपर्युक्त चारों पुस्तकों में एकांकीकार की प्रतिभा तथा कला का क्रमिक विकास लक्षित किया जा सकता है।

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी का 'सोहाग बिंदी और अन्य नाटक' नाम से एक एकांकी संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमें (१) 'सोहाग बिंदी', (२)

'वह फिर आई थी', (३) 'परदे का अपर पार्श्व', (४) 'शर्मा जी', (५) 'दूसरा उपाय ही क्या है' तथा (६) 'सर्वस्व समर्पण' एकांकी हैं। द्विवेदी जी कथानकों के निर्माण में बहुत कुशल हैं। अँग्रेजी नाट्य-साहित्य से भी यह प्रभावित हुए हैं। इनकी रचनाओं में विचारों की संबद्धता भली प्रकार से स्पष्ट हुई है। 'सोहाग बिंदी' और 'कामरेड' इनके श्रेष्ठ एकांकी कहे जाते हैं।

उपर्युक्त साहित्यकारों के अतिरिक्त इस समय हिंदी में और भी बहुत से प्रतिभाशाली एकांकीकार हैं, जो इस दिशा में सफलतापूर्वक आगे बढ़ रहे हैं। ऐसे एकांकीकारों में श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री अमृतलाल नागर, श्री [illegible] चौहान, श्री भारतभूषण अग्रवाल, श्री नरेश मेहता, डा० लक्ष्मीनारायणलाल, श्री कर्तारसिंह दुग्गल, डा० धर्मवीर भारती, श्री विश्वंभर 'मानव', डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, श्री गिरिजाकुमार माथुर, श्री राजीव सक्सेना तथा श्री मार्कंडेय आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

हिंदी साहित्य में एकांकी ने इतने कम समय में जो प्रगति की है, वह उसके उज्ज्वल भविष्य की द्योतक है। आज एकांकी की माँग हिंदी में बढ़ रही है और एकांकी कला में नित्य नए प्रयोग हो रहे हैं। उसकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर यह कहा जा सकता है कि बहुत शीघ्र ही हिंदी का एकांकी स्थायी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लेगा।

कवि जानकीवल्लभ शास्त्री

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री उत्तर छायावाद युग के प्रमुख कवियों में अपना स्थान रखते हैं। यही कारण है कि उनकी कविता में नवीनता के तत्वों का समावेश तो है ही, साथ ही उस पर छायावाद का भी प्रभाव स्पष्ट है। कहने का मतलब यह है कि जहाँ उनकी कविता में एक ओर नये युग की नई समस्याओं के प्रति काफी सुलझा हुआ दृष्टिकोण लक्षित होता है, वहाँ दूसरी ओर छायावाद के प्रभाव स्वरूप शब्दावली, विषय, रहस्यात्मकता, तथा काल्पनिकता आदि की दृष्टि से रोमानियत भी।

छायावाद का जन्म द्विवेदी युग की पौराणिक सभ्यता से प्रभावित निर्मित सहित्य के प्रति विद्रोह अथवा प्रतिक्रिया की भावना के फल स्वरूप हुआ था। कुछ लोग छायावाद को आधुनिक पौराणिक-धार्मिक चेतना के विरुद्ध लौकिक चेतना का विद्रोह तथा कुछ लोग उसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह भी मानते हैं। छायावादी विचारधारा के प्रमुख कवियों ने इस प्रवृत्ति की कविता के संबंध में जो वक्तव्य दिये हैं, वे छायावाद के स्वरूप को पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं कर सके। खैर, यहाँ हम छायावाद के स्वरूप आदि के संबंध में कुछ न कह कर सीधे शास्त्री जी की कविता पर आते हैं।

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री की कविता में साधारणतया छायावादी कविता की सभी खूबियाँ मिलती हैं। अर्थात् उनकी कविता में अस्पष्टता, काल्पनिकता, रागात्मकता, सुंदर, मधुर शब्द-योजना आदि विशेषतायें न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं। लेकिन इससे भी अधिक, जो अन्य गुण उनकी कविता में मिलते हैं, वे ही उन्हें इस प्रवृत्ति के कवियों से अलग एक स्थान देते हैं।

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री की प्रसिद्धि वैसे कई कारणों से है। लेकिन हमारी समझ में उन्होंने एक गीतकार के रूप में ही अधिक ख्याति या सफलता प्राप्त की है। उनके गीत छायावादी विचारधारा के अन्य कवियों के गीतों की विशेषताओं से युक्त होते हुए भी उनसे काफी विभिन्नता रखते हैं। उनके गीतों में लय और संगीतात्मकता की दृष्टि से काफी नवीनता मिलती है। एक ऐसा ही गीत, उदाहरण के लिए नीचे दिया जाता है, जिसमें शब्द-क्रम के द्वारा की गई सृष्टि दर्शनीय है—

'बादल री,
विन्दु विन्दु मधु बरसे,
तरसे भूतल पागल री।

सौरभ भीना झीना-झीना
अम्बर हर पुरवाई
विहर सिहरती, डरती - डरती,
धरती - धरती आयी,

चरण - चाप उस अ - तनु - वरण की
फूल - पात चल री।

नील - वसन - से निविड़ तिमिर का
मुख पर घूँघट डाले,
झिल्ली - गुंज - तमाम - कुंज में
खड़ी कौन तुम बाले।
ये भोले जुगनू सुषमा का
भेद न खोल सकेंगे।
अनबोले द्रुम तुमसे पहली
बार न बोल सकेंगे।

वेणु बजाऊँगा सुनने को
झंकृत पायल री।

बादल री।
विन्दु-विन्दु मधु बरसे,
तरसे भूतल पागल री।'[1]

---

1 'बादल री।'[1]

छायावादी कविता की कुछ अन्य विशेषतायें, जैसे भाषा-चमत्कार, अर्थ-चमत्कार, भाषा की सजावट आदि भी शास्त्री जी की कविता में मौजूद हैं। यहाँ ऐसे दो उदाहरण दिये जा रहे हैं--

(क) 'रेणु - पिंजरित कुंजित - कुंतल
रेशम श्याम सघन था,
स्वर्ण सलिल में मंद - मंद—
खिलता अरविंद वदन था,
मुकुलित - रदन, वचन - विरचन - श्रम—
लोल - कपोल, — विलोचन,
गीत मधुर मेरा अतीत क्या ?
स - स्मित बाल मदन था।'१

(ख) 'भ्रमता - भ्रमता भ्रमर भ्रमों के वन का
क्रम - क्रम से आलोक - लोक तक आया
लेने दो पहचान ज्ञान की माया—
वह कहलाती धूप और यह छाया।
शून्य नीलिमा में ध्वनि को छाने दो,
बन कर बन्द हुई है वीणा - वाणी,
विकल विश्व के कोलाहल से छन कर
आने दो प्रतिध्वनि, — करुणा कल्याणी।'२

शास्त्री जी कविता में मुख्यतया उन्हीं भावों की प्रधानता है, जो करुण तो हैं लेकिन मधुरता लिए हुए हैं। उनकी इस भाव-प्रधान कविता का क्रमिक विकास शास्त्री जी के काव्य-संग्रहों में देखा जा सकता है। उन्होंने अपने गीतों में इसी भाव को, अपेक्षाकृत, अधिक प्रश्रय दिया है, यद्यपि उनमें कहीं-कहीं

---

१ *'अतीत और वर्तमान।'*

२ *'कल्याणी।'*

३ *उदाहरण के लिए कवि के 'तीन तरंग', 'वासंती पतझड़', तथा कुछ नये काव्य-संग्रहों में यह विकास-क्रम देखा जा सकता है।*

काल्पनिकता भी काफी आ गई है, तथा साथ ही अन्य दोष भी आ गए हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कविता में अनुभूति की कमी स्पष्ट है—

कौन देगा साथ इस तूफान में ?
मैं चलूँगा सिर्फ चलने के लिए
मैं जलूँगा सिर्फ जलने के लिए
खाक मंजिल का पता मुझको नहीं
कौन देगा साथ इस अभियान में ?
कौन देगा साथ जलती आग में ?
कौन देगा साथ खूनी फाग में ?
याद है पीयूष पायी मित्र, पर—
कौन देगा साथ इस विषपान में ?
अब सुनी जाती नहीं बातें बहुत,
अब सही जाती नहीं घातें बहुत,
एक ही है सत्य, औ सब झूठ है,
कौन देगा साथ इस अभियान में ?
× × ×
चल रहा हूँ मैं अँधेरी रात में,
जल रहा हूँ घोर झंझावात में,
आज दुर्दिन की भरी बरसात है,
कौन देगा साथ इस सुनसान में ?'[१]

कवि की कुछ कविताओं में सांस्कृतिक पक्ष की प्रधानता या प्रबलता भी लक्षित होती है। उनकी 'शकुन्तला', 'चाणक्य,' तथा 'अश्वत्थामा' आदि रचनायें इसी ढंग की हैं। इन कविताओं की—या इस प्रकार की कविताओं की—एक और विशेषता उल्लेखनीय है। वह यह कि इनमें विषय पुराना होते हुए भी काफी नया पन है, जो नये युग का भी आभास देता है। कवि की इस प्रकार की कवितायें अपेक्षाकृत अधिक लंबी हैं और प्रत्येक भिन्न छंद और भिन्न शैली में लिखी गई है। हम यहाँ उपर्युक्त तीनों कविताओं का एक-एक पद (प्रथम) उद्धृत कर रहे हैं—

---

१ 'कौन देगा साथ.........।'

(क) राका - रजत - राजि - रजनी,
अशिथिल - निशीथ - मारुत - दोलित - दल,
गगन - सौध से मंद - मंद, मंथर - मंथर - पद—
उतरी एक परी ज्योत्सना - सी उन्मद।
शंकित - नयन, बंक - चितवन,
सर पद्म - सद्म, मधु - चंचल अंचल,—
उच्छ्वास - वासिता,
स्वर्ग - त्रासिता।१

(ख) लक्ष्य हमारा शुद्ध, प्राप्ति - पथ कैसा भी हो।
रक्तपात से पंकिल संस्कृति यदि रजस्वला,
होने दो, पंकज उससे भी कभी बढ़ेंगे।
घुटने दो उच्छ्वास, हवायें बहती ही हैं—
इनसे हिलकर, खिलकर पंकज सुरभि गढ़ेंगे।२

(ग) सोचा था बदला लूंगा हत्यारे से,
टोली ही है जुड़ी यहाँ हत्यारों की।
कृष्णार्जुन - काले - उजले दो पक्ष - धर—
गीध जमे, चर्चा निरर्थ हथियारों की।३

कवि की प्रकृति-चित्रण संबंधी कवितायें विशेष सुन्दर बन पड़ी हैं। प्रकृति-वर्णन संबंधी कविताओं में कवि की संवेदनाएँ स्वाभाविक हैं और सौंदर्य पक्ष की ओर किंचित् झुकी जान पड़ती हैं। कवि ने प्रकृति को अत्यंत सजीव और मोहक रूप में देखा है। कहीं कहीं कवि ने अपनी अनुभूतियों को जो अभिव्यक्ति दी है, वह बहुत ही स्वाभाविक और सहज है। ऐसे स्थलों पर प्रायः भावों की स्पष्टता के साथ ही साथ संगीतात्मकता भी आ गई है। एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

---

१ 'शकुन्तला।'
२ 'चाणक्य।'
३ 'अश्वत्थामा।'

बादलों से उलझ, बादलों से सुलझ,
ताड़ की आड़ से चंदा क्या झाँकता ?

मैं न हूँगा यहाँ, कह रहा नभ यही,
मैं न हूँगा कहीं ? भूमि कहती - 'नहीं।'

तुम हवा, मैं दवानल कह रहा नभ यही,
ताड़ की आड़ से चाँद क्या झाँकता ?

जीतने का कलक, वेदना हार की,
क्या कथा स्वप्न से भिन्न संसार की।

दर्द तुम घाव मैं क्यों वृथा टाँकता ?
ताड़ की आड़ से चाँद क्या झाँकता ?

रंग आया नहीं, रश्मि - छाया धुली,
रेख खुलती नहीं, तूलिका यों तुली।

शून्य तुम चित्र मैं क्यों वृथा आँकता ?
ताड़ की आड़ से चाँद क्या झाँकता ?

बादलों से उलझ, बादलों से सुलझ,
ताड़ की आड़ से चाँद क्या झाँकता ?[१]

जानकीवल्लभ शास्त्री का स्थान आधुनिक छायावादी कवियों में काफी ऊँचा है। प्रवृत्ति की दृष्टि से पूर्णतया समान न रहते हुए भी छायावाद के कवियों में प्रसाद, पंत, निराला तथा महादेवी के बाद उन्हीं का स्थान है। उनका व्यक्तित्व एक कवि और गीतकार के रूप में असाधारण है। उनका काव्य कवि की काव्य-प्रतिभा के विकास-क्रम का स्पष्ट परिचय देता है।

शास्त्री जी की काव्य-कला का विकास उनकी काव्य-कृतियों—'काकली', 'रूप-अरूप', 'तीर-तरंग', 'शिप्रा', 'मेघगीत', तथा 'अवंतिका' आदि—में देखा जा सकता है। यदि 'काकली' स्वर-संधि की दृष्टि से महत्व-पूर्ण है, तो 'रूप-अरूप' मूर्च्छना की दृष्टि से, 'तीर तरंग' और 'वासंती पतझड़' करुण-मधुर गायन की दृष्टि से, 'शिप्रा' और 'मेघगीत' गीतात्मकता की दृष्टि से तथा 'अवंतिका' कवि के व्यक्तित्व में निखार और प्रौढ़-काव्यत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

जहाँ तक हमारा विचार है, हम समझते हैं कि एक मिटती हुई काव्य-प्रवृत्ति के कवि होते हुये भी शास्त्री जी में एक नवीन दृष्टि है। पुरातनता के साथ ही नवीनतायुक्त दृष्टिकोण उनकी कविता की मुख्य विशेषता है। उनकी कविता उनके ठोस और परिपुष्ट ज्ञान की दिग्दर्शक है। उनके जैसा सुदृढ़, साहित्यिक आधार और सांस्कृतिक परंपरा तथा साथ ही संस्कृत का पांडित्य कम कवियों में देखने को मिलता है।

जैसा कि हमने ऊपर भी कहा है, शास्त्री जी मुख्यतया कोमल, करुण भावों के कवि हैं और अपनी कविता में, उन्हें, विशेष रूप से इन्हीं भावनाओं की अभिव्यंजना में सफलता मिली है। उनकी भाषा, छंद तथा शैली में काफी विशिष्टता है। उनकी कविता की उपर्युक्त विशेषतायें—हमारी हमारी सम्मति में—कवि के प्रखर व्यक्तित्व की परिचायक और उज्जवल भविष्य की द्योतक हैं।

———

प्रगतिवाद का स्वरूप

सन् १९३६ में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद जी ने सभापति पद से बोलते हुये कहा था—'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति पैदा करे, सुलाये नहीं।.......',उनके इन्हीं विचारों की व्याख्या करते हुये एक विद्वान ने लिखा है—'जहाँ तक प्रगतिवाद का संबंध है, वे स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा करते हैं कि अच्छा साहित्य सदैव प्रगतिशील होता है। साहित्य जीवन की गभीर समस्याओं के संबंध में जनमत तैयार करने का शक्तिशाली साधन है। यह जीवन की व्याख्या करता है और उसे बदलता है। इसलिये प्रेमचंद केवल उन फूलों को प्यार करते हैं, जो फल लाते है और उन बादलों को प्यार करते हैं, जो पानी बरसाते है। वे सौंदर्य के लिये सौंदर्य को प्रेम नहीं करते। सौंदर्य वह है, जो जीवन को ऊँचा उठाए। मनुष्य मनुष्य का शोषण करने के लिये पैदा नहीं हुआ, बल्कि उसे ऐसा बना दिया गया है। दोनों में कोई प्राकृतिक विरोध नहीं है। इसके विपरीत उसका जीवन समाज के विकास पर आधारित है। इसलिये प्रगतिशील लेखक मनुष्य को समाज से अलग करके नहीं देखता। वह मनुष्य और समाज के बीच और भी गहरे नाते की कल्पना करता है।' १

श्री विश्वंभर 'मानव' ने प्रगतिवाद को हिंदी की नवीनतम प्रवृत्ति माना है। २ इसके विपरीत डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित उसे कोई नई

---

१ 'प्रेमचद : चिंतन और कला।'

२ 'साहित्य संदेश', अक्टूबर १९४१।

या चौंका देने वाली प्रवृत्ति नहीं मानते। १ हाँ, यह दूसरी बात है कि आज उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया हो, जैसा कि श्री कृष्णविहारी मिश्र का विचार है। उन्होंने लिखा है—'प्रगति का शील युग युग से रहा है, परंतु प्रगतिवाद वर्तमान की देन है। प्रगति का अर्थ शील के रूप में केवल यही है कि साहित्य की भावना अपने युग की परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुकूल अपना स्वरूप परिवर्तित कर लेती है।' २

प्रगतिवाद की परिभाषा श्री रामपूजन तिवारी ने इस प्रकार की है—'.........जिस साहित्य में वर्तमान काल के संकटों के कारणों के विवेचन के साथ 'क्या होना चाहिये' इसकी ओर भी निर्देश रहेगा, हम उसे ही प्रगतिशील साहित्य कहेंगे, चूँकि वह साहित्य आज की दोषपूर्ण प्रणाली को बदलने तथा नयी व्यवस्था की सृष्टि में सहायक सिद्ध होगा।' ३ श्री प्रभाकर माचवे प्रगतिशील उसी साहित्य को मानते हैं जो व्यक्ति को संस्कारों से, समाज को रुढ़ियों से और राष्ट्र को अर्थ-दास्य से मुक्त करता चले और विकास की ओर बढ़ाता चले।' ४ 'प्रगति क्या है ?'—इस पर विचार करते हुये श्री जनेंद्रकुमार, अंत में, इस निष्कर्ष पर आते हैं कि—'प्रगति क्या ? इसकी जितनी ज्यादा छानबीन हम करें, उतनी ही कम है। लेकिन यह तो सबसे पहले हम जान लें कि प्रगति अनादि कालिक इतिहास के चरितार्थ की संगति से अवरुद्ध है। प्रगति वह गति है जो ऐतिहासिक संगति की सहयोगिनी है।'५ अपने एक निबंध में श्री कांतिचंद्र सौनरिक्सा ने बताया है कि आज का प्रगतिशील कवि जीवन के अधिक निकट है, वह जीवन को पीठ दिखा-कर पलायन नहीं करेगा।६

प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य स्पष्ट करते हुये श्री जगदीशप्रसाद

---

१ *'वीणा'*, जून १९४७।

२ *लखनऊ विश्वविद्यालय पत्रिका'*, जनवरी, १९५५।

३ *'राष्ट्रभारती'*, फरवरी १९५१।

४ *'साहित्य संदेश'*, मार्च १९५०।

५ *'हस'*, मार्च १९३७।

६ *'साहित्य संदेश'*, फरवरी १९४०।

चतुर्वेदी ने लिखा है कि प्रगतिशील साहित्य एक युग-विशेष की निज की समस्या को हल करने के लिये है। उस साहित्य का उद्देश्य है 'संसार में तत्कालीन आर्थिक दुरवस्था का नाश करना, शोषित वर्ग को सुखी करना।'[१]

डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित प्रगतिशील साहित्य की व्याख्या करते हुये लिखते हैं—'प्रगति साधारण अर्थ में जागृति, जीवन और गति की सूचना देती है और इस अर्थ में रूढ़िग्रस्त, निष्प्राण और अपरिवर्तनशील प्रगतिशील के उलटे समझे जायेंगे। प्रत्येक विकासोन्मुख समाज में परिवर्तन रहता है और वह साहित्य जो समाज की आशा तथा आकांक्षाओं के साथ उसकी प्रति दिन परिवर्तित भावनाओं का भी अपने में समावेश करके सामाजिक चेतना के साथ अग्रसर होता रहता है, प्रगतिशील कहलायेगा।'[२]

कुछ लोग प्रगतिवादी साहित्य को प्रचार का साहित्य कहते हैं। ऐसे लोगों को श्री विजयशंकर मल्ल का उत्तर है—'कहा जा सकता है कि तुलसी भी तो प्रचारक ही थे। उन्होंने राम का प्रचार किया। और तुलसी ने रामभक्ति का अपना धर्म माना तो आजकल के प्रगतिवादी कवि यदि मार्क्सवाद को अपना धर्म मानते हैं तो क्या बुरा है? आज का धर्म मार्क्सवाद है।'[३]

प्रगतिवाद एक 'वाद' है, कुछ लोग इससे भी असहमत हैं। उदाहरण के लिये श्री मोहनलाल प्रगतिवाद को कोई वाद नहीं मानते, वह उसे जीवन-दर्शन का एक विशिष्ट दृष्टिकोण मानते हैं।[४]

प्रगतिवाद के पक्ष और विपक्ष में अनेक तर्क दिये गये हैं तथा विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है। प्रगतिवाद की उपर्युक्त कुछ परिभाषाओं-व्याख्याओं को देखने से ज्ञात होता है कि इसके संबंध में विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। श्री मन्मथनाथ गुप्त इसे एक सामाजिक सिद्धांत

---

१ 'साधना', अक्टूबर १९४० ।

२ 'वीणा', जून १९३७ ।

३ 'माधुरी', जून १९४२ ।

४ 'साहित्य सदेश', फरवरी १९४९ ।

मानते हैं, जो हर समय क्रियाशील है, था और रहेगा ।१ उन्होंने प्रगति का एक अनिवार्य उपादान प्रयास माना है। उनका विचार है कि प्रयास में विचारधारा एक बहुत बड़ी चीज है और सहित्य, कला आदि विचारधाराओं में ही आ जाते हैं। विचारधारा क्रांति अथवा प्रतिक्रिया का एक प्रधान साधन हो सकती है, इसलिये साहित्य प्रगति अथवा प्रतिकिया का अस्त्र है। स्वाभाविक रूप से वह साहित्य, जो समाज को पीछे ढकेलता है, वह प्रतिक्रियावादी है ।२

श्री शिवदानसिंह चौहान ने अपने एक निबंध में लिखा है—'मगर साहित्य—विशेषकर हिंदी साहित्य या उर्दू साहित्य—एक ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न हुये, जब समाज की प्राचीन श्रृंखलायें स्वयं ही कमजोर हो चली थीं। इस प्रकार ये साहित्य (यद्यपि असंतुष्ट और और परतंत्र जब तक जनता की भावनाओं को ग्रहणकर तथा उनकी आहों को अपने स्वर में भर कर प्रगतिशील हो सकते थे) उन्नति, प्रगति या विकास के सूचक न होकर समाज पर बंधन ही बने रहे। इसका इतिहास जितना रोचक है, उतना ही शिक्षाप्रद भी।'३

प्रगतिवादी साहित्यकारों की कई कोटियाँ हैं। उनमें सिद्धांत संबंधी मतभेद हैं। उनका पारस्परिक मतभेद या सिद्धांत विषमता इस कारण भी हो सकती है कि वे विभिन्न कारणों अथवा प्रेरणाओं से इस मत विशेष के समर्थक हुये हैं। इसलिये उनमें मतैक्य न होना अनावश्यक या अस्वाभाविक नहीं। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने इस संबंध में लिखा है—'प्रगतिवादियों में कई भेद का होना अनिवार्य इसलिये है कि एक सिरे पर तो वह प्रगतिवादी हैं, जो क्रांति के जोश में बजे हुये या बजाये हुये कनस्तर को संगीत मानने को तैयार हैं, दूसरी तरफ वे लोग हैं, जो दूसरी बातों को उतना ही महत्व देते हैं, जितना उसके उद्भव-स्थल को। एक तरफ वे लोग हैं, जो दलगत साहित्य और प्रगतिशील साहित्य को करीब-करीब एक मानकर

---

१ *'प्रगतिवाद की रूपरेखा'* ।

२ *वही* ।

३ *'विशाल भारत', मार्च १९३७* ।

बैठे हैं, दूसरी तरफ वे लोग हैं, जो दलेनर साहित्य में प्रगतिशीलता देखने को तैयार हैं।'१

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि उस समय, जब प्रगतिवाद का जन्म हुआ, साहित्य के क्षेत्र में क्या स्थिति थी। क्या उस समय वास्तव में हिंदी में ऐसी परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण किसी नये वाद की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था ? क्या तत्कालीन साहित्य मनुष्य को कर्म क्षेत्र से हटकर, संघर्षमय संसार से मात्र पलायन करने की प्रेरणा देता था ? क्या उस समय साहित्यकार जनता के सामने एक स्वस्थ, ठोस जीवन-दर्शन प्रस्तुत कर सकने में अपने आपको असमर्थ पा रहा था ? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुये एक विद्वान ने लिखा है—'हमारे नये स्वतंत्र देश में इस बात की आवश्यकता है कि साहित्य लोगों में आशा उत्पन्न करके नये संग्रामों के लिये हमको तैयार करे। और किसी देश में कुछ भी हो, हमारे यहाँ साहित्य को साहित्य रहते हुये मुस्तैदी के साथ समाज-रचना में भाग लेना पड़ेगा। प्रगतिशील मतवाद का केवल इतना ही कहना है। हम अश्लीलता, पलायनवाद, रहस्यवाद, तथा छायावाद में पड़कर अपनी कर्मशक्ति को विघटित नहीं होने दे सकते।'२

श्री रामेश्वर वर्मा ने लिखा है—'प्रगतिवाद के प्रारंभ से कुछ सामान्य आधार थे। एक तो यह कि वह युग की सामयिक परिस्थितियों को काव्य में प्रतिबिंबित करता है, जनता की विकासशील परंपरा में साहित्य अपना भी योग देता है। साथ ही प्रगतिवाद साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उसकी सामयिक उपयोगिता में विश्वास रखता है। दकियानूसी आलोचकों के मतानुसार इसी कारण उसका स्थान साहित्य की श्रेष्ठतम (कुंठा-जन्यता) से गिर जाता है और आनंद की शुद्ध उपलब्धि नहीं होती। इसी प्रकार के आक्षेप हैं जो आज तक के दकियानूसी आलोचक प्रगतिवाद पर लगाते आये हैं और उसका विरोध करते रहे हैं।'३

---

१ *'प्रगतिवाद की रूपरेखा'* ।

२ *वही* ।

३ *'राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य'* ।

प्रो० प्रकाशचंद्र गुप्त के अनुसार 'प्रगतिशील आलोचना के कुछ ऐसे सिद्धांत हैं, जिन्हें सभी प्रगतिशील साहित्यकार स्वीकार करते हैं। पहला तो यह कि इन सिद्धांतों की वाह्य परीक्षा संभव है और उनका वैज्ञानिक विश्लेषण होना चाहिये। इस सौंदर्य-विज्ञान की स्थापनायें निरंतर स्पष्ट होती जा रही हैं।'१

ऊपर दिये गये उद्धरणों को यहाँ संकलित करने का उद्देश्य यही है कि पाठकों को प्रगतिवाद के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का परिचय मिल सके, वे उसके विविध पहलुओं को समझ सकें। उपर्युक्त किसी मत के पक्ष या विपक्ष में कोई तर्क देना यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है।

आज प्रगतिवाद हिंदी साहित्य की प्रमुख विचारधाराओं में अपना स्थान रखता है। प्रगतिशील चिंतन साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से हो रहा है। प्रगतिवादी साहित्य आज केवल समाज के शोषित अथवा निम्न वर्ग का ही चित्रण प्रस्तुत न करके संपूर्ण समाज के लिये एक व्यापक जीवन-दर्शन प्रस्तुत कर रहा है। उसका क्षेत्र संकुचित न होकर समाज-व्यापी है—समाज के प्रत्येक अंग पर, जीवन के हर पहलू पर वह समान रूप से लागू होता है। वह-संघर्ष को नयी दिशायें प्रदान करने वाला एक नया जीवन-दर्शन है।

———

१ *'आधुनिक हिंदी साहित्यः एक दृष्टि'*।

प्रयोगवाद और कवि माथुर

: १ :

छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदी में कई नई काव्य-धाराओं ने जन्म लिया। इनमें सबसे नई दिशा उस कविता की है, जिसे प्रयोगवादी संज्ञा दी जाती है। प्रयोगवाद का जन्म हिंदी में लगभग २० वर्ष पूर्व हुआ था। इसके जन्मकाल से लेकर अब तक इस कविता के पक्ष या विपक्ष में जो तर्क-वितर्क किये हैं, अथवा जो वाद-विवाद हुआ है, वह शायद इसकी उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता सिद्ध करने में सफल नहीं हो सका। हाँ, इससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि इस काव्य-धारा की ओर लोगों का ध्यान अपेक्षाकृत अधिक आकर्षित हुआ। लेकिन, हमारी समझ में, इस सबका कोई परिणाम निकल सका है अथवा प्रयोगवादी कविता का सही मूल्यांकन हो सका है, इसमें संदेह है। यद्यपि इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इस विशेष वाद की कविता के कैंप में भी कुछ प्रतिभाशाली व्यक्तित्व हैं, जो अपनी अनुभूतियों को अधिक व्यावहारिक और कलात्मक रूप देकर अपनी कविता में अधिक निखार ला सके हैं। अज्ञेय तथा गिरिजाकुमार माथुर आदि ऐसे ही कवियों में हैं।

आज से लगभग २० वर्ष पूर्व जब हिंदी में प्रयोगवाद का जन्म हुआ था, तब निश्चय ही इसके पीछे कोई ठोस जीवन-दर्शन नहीं था। स्पष्ट शब्दों में अगर हम कहें, तो यह कोई वाद भी नहीं था, जैसा कि अज्ञेय[1] तथा माथुर[2] दोनों ने स्वीकार भी किया है। लेकिन जब आलोचकों ने 'तार

---

१ *'आलोचना', १२।*

२ *'दूसरा सप्तक' (भूमिका)।*

सप्तक' के प्रकाशन के बाद इस कविता को 'प्रयोगवादी' कहना शुरू किया, तब शायद इस बाद की आवश्यकता समझी गई कि इस विषय पर कुछ ऐसे वक्तव्य दिये जाएँ जो इन सब विवादों का निराकरण करके इस कविता का सच्चा स्वरूप हमारे सामने रखें। (हालाँकि अज्ञेय यही कहते रहे हैं कि—'प्रयोग कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना कवितावादी कहना।' १) हमारा विचार है कि इन नये प्रयोगों का एक संयुक्त और सप्रयोजन प्रकाशन होना और इसके कारण लोगों के मन में, इस कविता के संबंध में एक विशेष बाद की धारणा बन जाना या ऐसा भ्रम होना, स्वाभाविक था। यह बात हम 'तार सप्तक' और 'दूसरे सप्तक' के कवियों की पारस्परिक समानताओं और असमानताओं को ध्यान में रखकर ही कह रहे हैं।

हम यहाँ प्रयोगवादी कविता के प्रारंभ और विकास पर विचार करेंगे। साधारणतयः यही समझा जाता है कि सन् १९४३ में 'तार सप्तक' के प्रकाशन-काल के लगभग प्रयोगवाद का जन्म—ऐतिहासिक दृष्टि से हुआ। ऐसा सोचना गलत है। कालक्रम के अनुसार प्रयोगशील कविता का जन्म (यहाँ हमारा मतलब कविता में नये प्रयोगों से है) सन् १९३७ में हुआ। सन् १९३७ से ४० तक कई कवि इस क्षेत्र में प्रवेश कर चुके थे। जहाँ तक प्रयोगवादी कवियों का सवाल है, कालक्रम की दृष्टि से हिंदी में प्रारंभिक प्रयोग करनेवाले (भाषा, शैली, छंद, भाव आदि क्षेत्र में) गिरिजाकुमार माथुर हैं। यों कविवर निराला ने इस समय से काफी पहले प्रयोग करने लगे थे और सर्वप्रथम कविता में प्रयोग करने का श्रेय उन्हीं को है। इस काल में हिंदी कविता यथार्थ के धरातल पर उतरने लगी थी, यद्यपि वह रूमानियत मिश्रित थी—जैसे पंत या नरेंद्र शर्मा का उत्तरकालीन कविताएँ। माथुर के बाद के नये प्रयोग करनेवाले कवि प्रभाकर माचवे, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेरबहादुर सिंह, रामविलास शर्मा२ आदि थे, जिन्होंने इस

---

१ 'दूसरा सप्तक' (भूमिका)।

२ रूपाभ के प्रकाशन काल के लगभग शर्मा जी ने छंद और अभिव्यंजना में प्रयोग किए।

दिशा में प्रयास किया। सन १९४० से ४३ तक बहुत से कवि इस ओर बढ़ चुके थे। और ऐसे ही कवियों में अज्ञेय भी हैं।

हमने जो बात कही है, संभव है उससे कुछ लोग सहमत न हों। लेकिन हमारा कथन निराधार नहीं है। हम एक-दो उदाहरणों से यह बात सिद्ध करने का प्रयत्न करें। यों कवि गिरिजाकुमार--जैसा कि हमने अभी कहा है—सन् १९३७ में ही नये प्रयोग करने लगे थे, लेकिन सन् ३८ तक उन्हें इस क्षेत्र में काफी प्रौढ़ता प्राप्त हो चुकी थी—विशेष रूप से मुक्त छंद, प्रतीक और उपमानों के प्रयोग में। सन् ३८ की लिखी उनकी एक कविता का यह अंश देखिये—

अब तो तुम्हारी सुधि
मुझको हुई है हिमालय की लकीर सी
उस दिन की बात जब
उछले थे धीमे ही
चलने से रेती में
चंचल चुपचाप चरण
मिट ही चुके हैं वे बिखरे निशान
किंतु
संस्मृति के सूने कठोर शिला-खंड पर
वज्र बन धँसे हैं वे तेरे इस्पात-चिह्न
मानों पत्थर भी गल के मोम बन गया था तब
और सूख जाने पर
जैसे के तैसे निशान बने रहे प्राण।१

सन् १९३९ से पहले वह अनेक सफल प्रयोग कर चुके थे।२ इस काल तक अन्य कवि भी इस ओर आकर्षित हो चुके थे। यों जैसा कि हम ऊपर

---

१ प्रेम से पहले—'मंजीर'।

२ उदाहरण के लिए 'मंजीर' की 'थोड़ी दूर और चलना है', 'याद यह हो आई मुझको पुरानी', 'बिदा', 'आई बरसात आज', 'सेजों पर आ जाना', 'रेल का पहिया' आदि कविताएँ देखिए।

कह चुके हैं कि 'निराला' जी प्रयोगवादी कवियों से पूर्व ही नये प्रयोग करने लगे थे—भाषा, भाव, छंद आदि में। और उनके ऐसे ही प्रयोगों की दृष्टि से उनका 'अर्चना' काव्य बहुत महत्वपूर्ण है।१ कुछ लोग यह स्वीकार भी करते हैं कि निराला जी के प्रयोग—मुक्त छंदों के क्षेत्र में—नयी पीढ़ी की मार्ग प्रशस्त करने की क्षमता रखते हैं।२

: २ :

अब हम प्रयोगवादी कविता के स्वरूप, उद्देश्य आदि पर, संक्षेप में विचार करेंगे। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रयोगों का मुख्य उद्देश्य नवीन सत्य की अभिव्यक्ति है।३ इसकी यह भी विशेषता कही जा सकती है कि यह छायावादी काव्य-जगत की कल्पना से हटकर यथार्थता की ओर बढ़ रहा है। प्रयोग की जो व्याख्या अज्ञेय जी ने की है, वह उल्लेखनीय है।४ 'प्रयोग है आत्म-सत्य अन्वेषण (कलाकार के आत्म-सत्य का)। प्रयोग विषय वस्तु और शिल्प दोनों की दृष्टि से फल-प्रद होता और अन्वेषण में प्रयोग के साधन (स्वयं अन्वेषण) को जानना भी शामिल है, इस प्रयोग में साधारणीकरण की मौलिक आवश्यकता है।'५ प्रारंभ में—सन् १९३७ से लेकर ४१ तक—जो प्रयोगवादी कविता लिखी गई, उसकी विशेषता माध्यम के नये प्रयोग ही थे। इन प्रयोगों का उद्देश्य, पात्र अभिव्यक्ति की नई प्रणालियों की काव्य में समावेश ही कहा जा सकता है। प्रयोगवादी कवियों में परस्पर काफी विभिन्नतायें मिलती हैं—विचारों और दृष्टिकोण में। लेकिन इसके बावजूद 'उनमें जो एकता दिखायी देती है उसका कारण शायद यही था कि छायावादी-युग के अंतिम काल में, छायावादी शैली और व्यंजना से अपनी जो रूढ़ि स्थापित की थी, उसमें विभिन्न भावनाओं

---

१ उदाहरण के लिये 'अर्चना' की 'बादल राग', 'जुही की कली' आदि कवितायें देखिये।

२ दे० 'आलोचना', २, पृष्ठ ७६।

३ दे० 'आलोचना' २, पृष्ठ ७२।

४ दे० 'दूसरा सप्तक' की भूमिका।

५ दे० 'आलोचना' २, पृष्ट ७२।

या परिवर्तित अवस्थाओं के प्रभावों का अधिक भेद नहीं किया जा सकता था और अभिव्यक्ति अधिकतर एक ही ढंग से संभव थी'।१

गिरिजाकुमार माथुर ने अपने एक निबंध में प्रयोगवाद से संबंधित कुछ मौलिक प्रश्न उठाये हैं।२ वे प्रश्न हैं—'प्रयोगशील कविता का क्या अर्थ है? काव्य में प्रयोग और अन्वेषण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या थी? उसका प्रारंभ और विकास कैसे हुआ? आज उनका क्या रूप है? प्रयोग साध्य हैं या साधन? यदि साधन हैं तो किस चीज के? 'किसकी' अभिव्यक्ति के? हिंदी कविता की प्रगति में वे साधक हैं या बाधक? क्या प्रयोग का कोई स्वतंत्र वाद हो सकता है? क्या यह वास्तव में 'रूपवाद' का ही एक धारा नहीं है, जो प्रयोग और प्रतीक की ओट में प्रगतिशील कविता के विरोध में खड़ी हुई है और रूप-प्रकार तथा माध्यम पर जोर देकर यथार्थ वस्तु-तत्व और जीवन का वास्तविकता के बीच दीवार बनना चाहती है या कि माध्यम? शैली, शिल्प के प्रयोग जीवन दर्शी काव्य के हित में भी हैं?

: ३ :

प्रयोगवादी कविता के संबंध में उपर्युक्त-शब्द हमने इसलिये कहे हैं कि गिरिजाकुमार भी प्रयोगशील कवि हैं। इस नाते उपर्युक्त प्रश्न भी विचारणीय थे, क्योंकि वे गिरिजाकुमार के काव्य की पृष्ठभूमि का परिचय देने में सहायक होते हैं। गिरिजाकुमार की कविता का मूल्यांकन करते समय यह पृष्ठभूमि ध्यान में रखनी होगी। चूँकि गिरिजाकुमार प्रयोगवाद के श्रेष्ठ कवियों में हैं, अतः हमें उनकी कविता का मूल्यांकन करने में विशेष सतर्कता से काम लेना होगा—उनकी कविता को ठीक मानों में समझने के लिये।

हमारी यह धारणा है कि माथुर जी की कविता में प्रयोगवादी कविता की तो विशेषतायें हैं ही, साथ ही कुछ अन्य गुण भी हैं, जो उनकी—प्रयोगवादी कवियों से—एक प्रकार की असमानता सिद्ध करते हैं और हमें इस

---

१ *'आलोचना'*, २।

२ वही, पृष्ठ ७४।

बात की प्रेरणा देते हैं कि हम किसी वाद (और हम यहाँ स्पष्ट ही हमारा मतलब प्रयोगवाद से है) की संकुचित सीमा से अलग, उसकी परिधि से परे, उनकी कविता का मूल्यांकन करें। हम इसे और भी स्पष्ट करें। हमारी निश्चित सम्मति है कि श्री गिरिजाकुमार की कविता ऐसे अनेक दोषों से मुक्त है, जो प्रयोगवाद संबंधी भ्रांत धारणाओं का कारण हैं।

गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद के प्रारंभिक कवि हैं। सन् १६४१ में—'तार सप्तक' के प्रकाशन से दो वर्ष पहले ही—उनकी प्रारंभिक कविताओं का संग्रह 'मंजीर' प्रकाशित हो चुका था, जिसमें उनके अनेक नये और सफल प्रयोग मिलते हैं। वह सर्वप्रथम यथार्थ की ओर बढ़ने वाले कवि हैं। इस बात के कहने से हमारा मतलब यह है कि सन् १६३७ से पहले (सन् १६३७ से ही गिरिजाकुमार ने प्रयोग शुरू किये थे) श्री गिरिजा-कुमार छायावादी कवि थे। और इस क्षेत्र में वह पंत और महादेवी से प्रभावित थे (यों उनकी प्रारंभिक कविताओं पर मिल्टन, कीट्स और निराला का प्रभाव है)। सन् ३७ तक आते-आते वह ठीक वैसी ही कवितायें लिखने लगे, जैसी कि छायावादी कवि—विशेष रूप से महादेवी—लिखते थे। उदाहरण के लिये निम्नलिखित दो कवितायें देखिये—

(१)—फिर मिलन होगा वियोगिनि
नयन सुख मिल जायेंगे सब
सुमन-सुख खिल जायेंगे तब।
शशि किरण की बाँह में फिर उर-गगन होगा वियोगिनि।
अधर होंगे मौन छन भर,
कह सकेंगे कौन मन भर।
उधर सुन्दर वक्ष का कंपन मधुर होगा वियोगिनि
उन चरण पर वारने को
हृदय का धन हारने को
मलय चन्दन उन क्षणों प्रति अश्रु कन होगा वियोगिनि[1]

(२)—हृदय के स्वप्निल गगन में हँस चलीं तुम चाँदनी बन,
सजल स्मृतियाँ चौंक जातीं मूक उर में रागिनी बन।

---

१ 'फिर मिलन होगा वियोगिनि'—'मंजीर' पृष्ठ ७२।

तारकों से बिखरते हैं,
अश्रु उस छाया मिलन में।
वेदना की आह फैली आज सूनी यामिनी बन।
इन रुपहले बादलों में
फैलती मुसकान हलकी।
गीत की झनकार जाती रश्मि की अनुगामिनी बन।
स्वप्न के इन बंधनों में,
कौन बंधन हीन बँधता।
अश्रु-घन भी हँस पड़े जब तुम हँसीं स्मित दामिनी बन।[१]

इनमें से प्रथम की तुलना 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ'[२] और द्वितीय की 'विरह की घड़ियाँ हुई अलि मधुर मधु की यामिनी सी'[३] से कीजिये।

जहाँ तक नये प्रयोगों का सवाल है, हम समझते हैं, गिरिजाकुमार मुक्त छंद के सफल कवि है। उनका महत्व इस कारण कुछ और भी बढ़ जाता है कि जहाँ एक ओर उन्हें मुक्त छंद के प्रयोगों में काफी सफलता मिली है, वहाँ दूसरी ओर, बहुत से अन्य प्रयोगवादी कवियों को बिल्कुल नहीं या बहुत कम—यहाँ तक कि अज्ञेय की भी इस दृष्टि से कई कविताएँ कमजोर हैं।[४]

: ४ :

श्री गिरिजाकुमार की कविताओं का सबसे पहला संकलन 'मंजीर' है, जो सन् १६४१ में प्रकाशित हुआ था। इसमें उनकी तेंतालीस कवितायें संगृहीत हैं। इस संग्रह में यो तो उनकी सन् १६३५ मे लेकर ४० तक का सभी प्रतिनिधि कवितायें मिलती हैं, लेकिन हमारी सम्मति में उनकी छायावादी तथा प्रारंभिक प्रयोगवादी कवितायें ही विशेष महत्वपूर्ण हैं।

---

१ 'हृदय के स्वप्निल गगन में'—'मंजीर', पृष्ठ २२।

२ 'नीरजा'—महादेवी।

३ 'सांध्यगीत'—महादेवी।

४ यथा 'सावन मेघ' 'कंकरीट की पोर्च', 'यह दीप अकेला स्नेह भरा', 'अकेली न जइयो राधे' कवितायें।

'मंजीर' की सर्वप्रथम कविता 'थोड़ी दूर और चलना है' की कुछ पंक्तियाँ देखिये—सादगी, भाव और गेयत्व की दृष्टि से यह कविता महत्वपूर्ण है—

थोड़ी दूर और चलना है।
मुरझ चली प्राणों की गुंजन,
थकती जाती स्वर की कम्पन।
बीती सब जीवन की सिहरन,

ओ गीतों के पथिक ! इसी सुनसान विजन वन में रुकना है।१

'मंजीर' की कविताओं में प्रकृति-चित्रण के भी सफल चित्र मिलते हैं। दो उदाहरण देखिये—

१—गोधूली में धूल भरी जब
वन से चरकर गायें आतीं।
दूर मंदिरों में संझा की—
झाँझ - आरती भी बज जातीं।
दीप जलाकर तुम तुलसी पर,
गोदी में ले हमें सुलातीं।
नींद बुलाने को थपकी दे,
नींद भरी तुम लोरी गातीं····
थके हुए हम लोग कंधे से—
सोते आँचल ओट तुम्हारे।२

२—करुण सन्ध्या की बिदा।
साँस का अन्तिम सुमन की फैलती है मन्द होकर।
दूब पर गोधूधि-बेला भी उतरती आज रोकर।
श्याम झुरमुट में विरह की,
तान झींगुर ने उठाई।
गोद तारक चावलों से साँझ की भर दी निशा ने।
एक दो जो गिर रहे उनको समेटे उस दिशा ने।

---

१ 'मंजीर', पृष्ठ १।

२ 'माँ'—'मंजीर', पृष्ठ ३।

छूटती - सी बाँह वह,
अन्तिम किरण-सी दी दिखाई।
हो रही चलते मिलन में नयन की नत-ज्योति फीकी।
पात-फूलों से क्षितिज की देहली चुपचाप टीकी।
दूर के उस ग्राम में—
रथ से उड़ी कुछ धूल छाई।१

'अदन पर बम वर्षा' इस संग्रह की एक अत्यंत महत्वपूर्ण कविता है। इसकी रचना में मुक्त-संगीत में की गई है। विषय, छंद आदि की दृष्टि से यह एक नवीन प्रयोग है। देखिये—

कोसों दूर हमारे इस एकांत ग्राम से
हलके बादल की भरी हुई ईशान-दिशा में
सुन्दर राजनगर है
ऊँचे-ऊँचे महल चमकते
चिकनी सड़कें बाग बगीचे
बिजली की रोमांस भरी पेड़ों में से छनती उजियाली
मोती के रंग के बँगलों को
किरणों की बाहों में धीमे से लिपटाये।
वहाँ एक उजले फूलों-सी खिली जगह पर
मेरा भी कोई रहता है।
पश्चिम के गोधूल गगन में रण की काली आँधी आई
जिसकी लम्बी छाया
अपने निर्जल सागर के तट पर आ पहुँची
क्या होगा उनका जिन पर था प्यार हमारा
क्या होगा उनका जिनकी पूजा को—
अपनी विवश गरीबी में भी सब कुछ वारा
यदि आयेंगे अत्याचारी
सुन्दर सुन्दर नगर ग्राम को
खँडहर औ वीरान बनाने

---

१ 'संध्या'—'मंजीर', पृष्ठ ३१।

क्या होगा इन आँखों में रहने वालों का
क्या होगा इन सपनों में बसने वालों का
अपनी कमजोरी की परवशता में
तरस तरस कर बेबस रह जाने वालों का।
खाली हाथों बैठे हैं हम
औरों की इच्छा पर जीने को
जी थोड़ा थोड़ा होता है
आनेवाले कठिन दिनों में
कैसे मिल पायेंगे—
हम तुम प्यार भरे दो प्राणी
बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई वियोगी आँखें।[1]

नये उपमानों और यथार्थवादिता की दृष्टि से 'प्रेम से पहले' शीर्षक कविता श्रेष्ठ हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिये—

गंगा के रेत भरे मरु से किनारे पर,
हम तुम मिले थे उस सूनी दुपहरी में।
शिशिर क्षणों की उस मीठी दुपहरी में।
यौवन के भाग्य से
जीवन के अभाग्य से।
तुम थीं छिपाये हुये मोह भरी माया एक
उस श्याम जादू की काली-सी छाया एक।
अपने भोलेपन में।
तुम थीं अजान बड़ी—
सब कुछ समझती थीं फिर भी अजान थीं।
सुन्दर दुरावमयी,
तुम बड़ी भोली हो।

× × ×

पहिले मैं देवता था

---

१ 'मंजीर', पृष्ठ ६८।

अब मैं पुजारी हूँ
इतना पतन आज
अब तुम बनी हो सुन्दरता की पूज्य-देवि
पूजते हैं तुमको हम प्राणों में बिठला के
एक दिन वह था जब
तुम बनीं पागल थीं मेरा प्रेम पाने को
प्यार तो हमारे इस रूप-पूर्णिमा से सखि
मुझको है प्रेम खूब
जिसको मैं एक दिन ध्यान में न लाता था।१

इस संग्रह की केवल एक कविता का हम एक उदाहरण और देंगे। वह है, 'अभी तो झूम रही है रात'। शृंगारिकता की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ गीत है—

बड़ काजल आँजा है आज,
भरी आँखों में हलकी लाज।
तुम्हारे ही महलों में प्राण,
जला क्या दीपक सारी रात।
निशा का-सा पलकों पर चिह्न,
जागती नींद नयन में प्रात।
जगीं-सी आलस से भरपूर,
पड़ी हैं अलकें बन अनजान।
लगी हैं उस माला में कैसी,
सो न पाई-सी कलियाँ म्लान।
सखी, लगता है ऐसा है आज,
हौज से जल्दी हुआ प्रभात।
छिप न पाया पूनों का चाँद,
अभी तो झूम रही है रात।२

---

१ 'प्रेम से पहले'—'मंजीर' पृष्ठ ६०।
२ 'मंजीर' पृष्ठ ७०।

: ५ :

अब हम श्री गिरिजाकुमार की 'तार सप्तक' में संगृहीत कविताओं पर एक दृष्टि डालेंगे। यों कवि ने अपनी कविता में टेकनीक पर अधिक ध्यान दिया है। क्योंकि कवि का विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।[1] कवि के द्वारा वर्णित ऐसे दृश्य—जिनमें मात्र वातावरण की प्रधानता है या जिनमें सिर्फ वातावरण का ही चित्रण किया गया है—प्रभावशाली और हृदय-स्पर्शी हैं। हम यहाँ कवि की ऐसी ही (वातावरण प्रधान) दो कवितायें उद्धृत कर रहे हैं—

१—सैमल की गरमीली रुई समान
जाड़ों की धूप खिली नीले आसमान में
झाड़ी झुरमुटों से उठे लंबे मैदान में।
रूखे पतझर से भरे जंगल के टीलों पर
काँपकर चलती समीर हेमंत की
लंबी लहर सी।
दूरी के ठिठुरे-से भूरे-भूरे पेड़ों पर
ठंडे बबूले बना धूल सी जाती थी—
रेतीले पैरों से धीरे ही दाबकर
काई से काले पड़े ध्वंस राजमहलों को
पत्थर के ढेर बने मंदिर-मजारों को
जिनसे अब रोज साँझ कुहरा निकलता था
प्यासे सपनों की मँडराती हुई छाँह सा।
गूँजता था सूनसान—
ऊजड़ खँडेरों में
गिरते थे पत्ते
वन-पंछी नहीं बोलते थे
नाले की धार किनारे से लगी जाती थी।[2]

---

१ 'तार सप्तक' पृष्ठ ४०।

२ 'कुतुब के खँडहर'—'तार सप्तक'।

२—रुककर जाती हुई रात का
अंतिम छाँहों भरा प्रहर है
श्वेत धुयें से पतले नभ में
दूर भाँवरे पड़े हुये सोने-से तारे
जगी हुई भारी पलकों से पहरा देते
नींद-भरी मंदी बयार चलती है
वर्षा भीगा नगर
भोर के सपने देख रहा है अब भी
लंबे-लंबे धुँधले राजपथों में
निशि भर जली रोशनी की
कुछ थकी उदासी मँडराती है।
पानी रँग हुये बँगलों के वातायन से
थकी हुई रंगीनी में डूबी प्रकाश अब भी दिख जाता
रेशम-पर्दों, सेजों, निद्रा-भरे बंधनों की छाया सा।
बुझी रात का अभी अखीरी पहर नहीं उतरा है
दूरी के रेखा-छाँहों से पेड़ों ऊपर।
ठंडा-ठंडा चाँद ठिठककर मंदा होता
नभ की लंबी साया दूरी तक पड़ती है।[१]

कुछ कवितायें ऐसी भी हैं, जिनमें कवि ने सबसे पहले कविता की आधार-भूमि का निर्माण किया है—उसके पहले बंद में। उदाहरण के लिये 'रेडियम की छाया'[२] और 'क्वाँर की दोपहरी'[३] शीर्षक कविताओं के बंद देखिये—

१—सूनी आधी रात
चाँद कटोरे की सिकुड़ी कोरों से
मंद चाँदनी पीता लंबा कुहरा
सिमट लिपट कर।

---

१ *'रुक कर जाती हुई रात'—'तार सप्तक'* ।

२ *'तार सप्तक'* ।

३ *वही* ।

२—क्वाँर की सूनी दुपहरी
श्वेत गरमीले, रुयें-से बादलों में,
तेज सूरज निकलता फिर डूब जाता।
घरों में सुनसान आलस ऊँघता है,
थकी राहें ठहर कर विश्राम करतीं,
दूर सूनी गली के उस छोर पर से
नीम नीचे खेलते कुछ बालकों की
मिली-सी आवाज आती।

: ६ :

'नाश और निर्माण' कवि का दूसरा संग्रह है, जिसमें उसकी सन् ४६ तक की कवितायें हैं। इस संग्रह की लगभग सभी कवितायें मुक्त छंद का सफल प्रयोग हैं। इस संग्रह की कविताओं में कुछ ऐसी भी हैं, जिनमें कवि ने सवैये को तोड़कर एक नये छंद का निर्माण किया है।

यहाँ हम मुक्त छंद (फ्री वर्स) के संबंध में दो शब्द कहना आवश्यक समझते हैं। अँग्रेजी में मुक्त छंद उस छंद को कहा जाता है, जिसमें संगीत और लय को विशेष महत्व दिया गया हो। जिन छंदों में अर्ध विराम या पूर्ण विराम आदि पर जोर दिया गया हो, उसे 'ब्लैंक वर्स' कहा जाता है। लेकिन हिंदी में हमें ऐसा नहीं देख पड़ता। यहाँ हम देखते हैं कि मुक्त छंद के अंतर्गत तीन प्रकार के छंदों का प्रयोग होता है—

—एक तो वे कविताएँ जो वास्तव में छंद से मुक्त (फ्री वर्स) है।

—दूसरे वे जो 'ब्लैंक वर्स' (मुक्त छंद) हैं।

—और तीसरे वे जो इन दोनों में से कोई नहीं हैं। अर्थात् वे न 'ब्लैंक वर्स' हैं, न 'फ्री वर्स'। वे इन दोनों से अलग एक तीसरे प्रकार के हैं और उनमें गद्यात्मकता अधिक है।

यहाँ हम 'नाश और निर्माण' तीनों प्रकार के छंदों का १-१ उदाहरण देते हैं—

१—मेरे मन में एक आकांक्षाओं का थका मौन,
निचोड़ी हुई लालसाएँ
झींखता दंभ
खुमारी उतरे पर
टूटते बदन वाली
प्रेरणा ज्वलन।१

२—संध्या बेला
अब छिन्न पुष्प-सी छुपी हुई लघु धूप हुई,
है ठिठक रहा धरती की रेखा के ऊपर
वह गोल, रक्त पत्थर के टुकड़े सा सूरज,
निष्प्राण, अचल।
इस महासमर की बोझल छाँहों में दबकर।२

३—अक्स देखने के हम आदी हैं
आदमी न देखते अक्स देखते हैं
रात का सुनसान भनकता है
जिसमें सोते हुये झोपड़ों
मिट्टी के घरों
मुँह तक मैली चादर लपेटे
हटरी से मकानों को
यह आँधी सी सन्नाती चलती
जगमग दीवाली की पाँत
पीछे की दूरी के ऊबते अँधेरे में
छोड़ती चली जाती है।३

'नाश और निर्माण' की 'बसंत की रात' शीर्षक कविता देखिये—इसमें भी कवि ने सवैये को तोड़कर एक नये मुक्त छंद का प्रयोग किया है।

---

१ *'ज्ञानोदय'*।

२ *'युग-साँझ—'नाश और निर्माण'*।

३ *'तूफान एक्सप्रेस की रात'—'युग-चेतना'*।

आज हैं केसर रंग रँगे वन,
रंजित शाम की फागुन की खिली पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन,
सोने की छाँह - सा,
बोलती आँखों में
पहिले बसंत के फूलों का रंग है।
गोरे कपोलों पे हौले से आ जाती,
पहिले ही पहिले के
रंगीन चुंबन की सी ललाई।
आज हैं केसर रंग रँग—
गृह, द्वार, नगर, वन,
जिनके विभिन्न रंगों में है रँग गई
पूनो की चंदन चाँदनी।
जीवन में फिर लौटी मिठास है,
गीत की आखिरी मीठी लकीर सी,
प्यार भी डूबेगा गोरी सी बाँहों में,
ओठों में, आँखों में,
फूलों में डूबे ज्यों
फूल की रेशमी छाँहें।[१]

नये उपमानों की दृष्टि से निम्न प्रयोग दर्शनीय है—

अब ये बसंत,
कितने सहस्त्र वर्षों की ममी बना आया,
बेहिस, अवाक,
ये शिशिर सरीखी बादल भरी हवा चलती
रोमाँ की यादें टूट रहीं,
ये मुझे उड़ाती ले जातीं वर्षों पीछे,
जाड़ों की संध्या का वह अंतिम प्रहर,
रात, संदली चाँदनी से धीरे रचती जाती,
जब कालिदास की नगरी में
उन गीतों की छाया में मैं भी बैठा था,

---

१ *'बसंत की रात'*—*'नाश और निर्माण'*।

पहिली भी—अंतिम बार वही
जग ने जिसको मिटने पर ही है पहिचाना,
वह चित्र न मुझ पर से उतरा,
उसको ही पूरा करने में,
मुझको भी पूर्ण न होने का वरदान मिला,
मैं चलता जाऊँगा इतिहासों के ऊपर
यद्यपि पाषाण हुआ जाता ।१

इस संग्रह की केवल एक कविता की चर्चा हम और करेंगे। यह 'लिरिक' का एक नया प्रयोग है, जिसमें परंपरागत व्यंजन - तुकांतों के बदले स्वर—ध्वनियों के माध्यम से तुकांत (वावल राइम) प्रस्तुत किये हैं—

(१)—लो ये उजयाले के घेरे फिर आसमान की ओर चले।
छै वर्षों पहले आई थी
काली तूफानी एक रात,
रक्तिम पुच्छल तारा डूबा
ज्यों शाम-मृत्यु का उठता फासफोरसी हाथ
निज इस्पाती बाँहें पसार
फैल गई, युग के पृष्ठों को
काली स्याही से रँगती
छै वर्षों की वह एक रात ।२

: ७ :

अब हम कवि के नवीनतम प्रकाशित काव्य-संग्रह 'धूप के धान' पर एक दृष्टि डालेंगे। इसमें कवि की सन् ४६ से अब तक की लिखी कवितायें संगृहीत हैं। निस्संदेह हमें कवि से इस संग्रह की कविताओं में विशेष प्रौढ़ता की आशा करनी चाहिये।

'नाश और निर्माण' में हम कवि द्वारा मुक्त छंद में किये गये प्रयोग देख चुके हैं। 'धूप के धान' में कवि ने कई नये छंदों का प्रयोग किया है।

---

१ 'अधूरा गीत'—'नाश और निर्माण'।
२ 'अनि[illegible]'—'नाश और निर्माण'।

उपमानों, भाषा, छंद, लय, संगीतात्मकता—ये प्रयोग महत्वपूर्ण हैं। दो उदाहरण देखिये—

(१)—चल पड़ी तेज हवा
बदल गया मौसम
आ गई धूप में कुछ गरमी
बढ़ गया दिन का उजेला रस्ता
जिसपे सूरज के चमकते पहिये
शाम को देर तक चले जाते १

(२)—उजला पाख क्वाँर का फूल कास का
खिली चाँदनी चंदाली रात की कली सुहावनी
नरम नखूनी रंग धुले आकाश में
छिटक रही है पूरनमा की चाँदनी

० ० ०

उभरे रोयें छुवा गई है चाँदनी
सींग नुकीले चुभा गई है चाँदनी
चंचल नयनी गोरी हिरनी चाँदनी २

श्री गिरिजाकुमार—जैसा कि हम कह चुके हैं—कई बातों में (अन्य) प्रयोगवादी कवियों से कुछ असमानता रखते हैं। लेकिन, हमारी समझ में, इनमें सबसे बड़ा अंतर यह है कि अन्य प्रयोगवादी कवियों ने भी—प्रयोग तो किये—लेकिन अधिकांश ने, सिर्फ शिल्प के क्षेत्र में ही, वस्तु के क्षेत्र में नहीं। यह एकांगिता प्रयोगवादी कविता की सफलता में काफी सीमा तक बाधक भी हुई। गिरिजाकुमार की कविता इस दोष से, अपेक्षाकृत, अधिक मुक्त है।

शब्द-शिल्प का दृष्टि से निम्न कविता एक अच्छा प्रयोग है—

चाँद हेमंती
हवा बहती कटीली

---

१ 'शाम की धूप'—'धूप के धान'।

२ 'चाँदनी गरबा'—'धूप के धान'।

चाँदनी फैली हुई है।
ओस नीली
चाँदनी डूबी हवा सुधि-गंध लाती
याद के हिम वक्ष से आँचल उड़ाता
चाँद के जब गोल बीसों आइनों में
मोम की सित मूर्ति सी गत आयु आती१

इसी प्रकार सामाजिक यथार्थ के शिल्प का प्रथम बार प्रयोग उनकी 'ढाकवनी' और 'देह की आवाज' शीर्षक कविताओं में मिलता है। 'ढाकवनी' की ४ पंक्तियाँ देखें—

लाल पत्थर लाल मिट्टी
लाल कंकड़ लाल बजरी
लाल फूले ढाक के वतन
डांग गाती फाग कजरी २

गीतात्मकता की दृष्टि से उनकी कुछ कवितायें बहुत सुन्दर हैं। 'पंद्रह अगस्त' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना ३

'धूप के धान' में नये छंदों के प्रयोग की दृष्टि से 'शाम की धूप' ४ 'नये साल की साँझ'५ तथा 'चाँदनी गरबा'६ आदि कवितायें महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार 'न्यूयार्क में फाल'७, में आधुनिक वस्तु-प्रतीकों का उपयोग

---

१ 'हेमंती पूनो'—'धूप के धान'।
२ 'ढाकवनी'—'धूप के धान'।
३ 'पंद्रह अगस्त'—'धूप के धान'।
४ 'धूप के धान', पृष्ठ २७।
५ वही, पृष्ठ ८०।
६ वही, पृष्ठ ७३।
७ 'धूप के धान', पृष्ठ ६८।

किया गया है। 'याज्ञवल्क्य और गार्गी'१, 'चंदरिमा'२, सिंधु तट की रात'३, 'तेंतीसवीं वर्षगांठ'४ आदि कवितायें, वस्तु और शिल्प दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

: ८ :

श्री माथुर की कविता में उपर्युक्त अनेक विशेषताओं के समान ही कुछ कमियाँ भी स्पष्ट हैं। उनकी छंदबद्ध कविताएँ अपेक्षाकृत अधिक लंबी हैं। इसलिए उनमें अनुभूति की व्यापकता के बावजूद चुस्ती की कमी है और उनका प्रभाव कम हो गया है। उनके काव्य-संग्रहों की एक और कमी यह भी है कि वे उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित कविताओं के मात्र संकलन मालूम होते हैं, और कवि द्वारा प्रस्तुत जीवन-दर्शन को स्पष्ट करने में समर्थ नहीं हो पाते। यों कवि ने मुक्त छंद-रचना में सफलता प्राप्त करने के साथ ही छंद-बद्ध कविताएँ भी अच्छी लिखी हैं।

'तार सप्तक' के कवियों में श्री गिरिजाकुमार ही शायद ऐसे कवि हैं, जिनकी चित्रात्मक - प्रतीक - शैली को दूसरे सप्तक में आगे बढ़ाया गया है। यही नहीं, बल्कि दूसरे सप्तक के बाहर के कवियों की पीढ़ी भी उनके शैली-शिल्प के प्रयोगों को लेकर आगे बढ़ी है। अन्यथा, अन्य कवियों की शैली और प्रयोग उन्हीं तक सीमित होकर रह गये हैं। संक्षेप में, श्री गिरिजा कुमार एक ऐसे कवि हैं, जो अपनी काव्यानुभूति को किसी वाद की परिधि में संकुचित न करते हुये—उससे रक्षित करते हुये—सहज अभिव्यक्ति दे रहे हैं। उनके काव्य-संग्रह—'मंजीर', 'नाश और निर्माण' और 'धूप के धान'—तथा इधर की नवीनतम मौलिक कवितायें उनकी काव्य-प्रौढ़ता की परिचायक हैं।

---

१ 'धूप के धान', पृष्ठ ७९।

२ वही, पृष्ठ ९४।

३ वही, पृष्ठ ७५।

४ वही, पृष्ठ ९१।

साहित्यिक परंपरा का महत्व

हमारा विचार है कि एक क्रियाशील सृजनकर्ता के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी महत्वपूर्ण साहित्यिक परंपराओं से परिचित हो, क्योंकि इस प्रकार वह अतीत युगों में कलाओं के विकास की धाराओं और रूपों से अवगत हो जाता है। हमारे इस कथन का यह अर्थ नहीं कि उसे अपने आपको परंपराओं की सीमाओं में बाँध देना चाहिये और उन्हीं में सिमटकर आगे बढ़ना चाहिये और न यह ही कि उसे उनका अंधानुकरण करना चाहिये। वास्तव में प्रत्येक युग में विभिन्न साहित्यिक समस्यायें महत्वपूर्ण समझी जाती हैं और युग-परिवर्तन के साथ ही साथ उनमें भी अंतर आता रहता है। इसलिये हम यह तो मानते हैं कि परंपराओं का अंतरंग परिचय एक साहित्यकार के लिये आवश्यक है, किंतु यह नहीं कि उसे उन्हीं के चश्मे से वर्तमान समस्याओं पर भी दृष्टि डालनी चाहिये। और हमारा अनुमान है कि जो भी साहित्यसर्जक यह चाहता है कि वह अपने साहित्य में, समकालीन मानव-जीवन की कुछ मूलभूत समस्याओं के उद्घाटन की सामर्थ्य रख सके, वह अपनी विकासशील साहित्यिक परंपराओं से परिचित तो होता ही है, साथ ही वह कुछ हद तक उसके मूलभूत तथ्यों को आत्मसात् भी कर चुका होता है। और इसके बावजूद, वह एक नई और समर्थ दृष्टि से संपन्न कलाकार होता है। उसमें इस बात की भी क्षमता होती है कि वह अपने साहित्य में चिरंतन मानव मूल्यों का समावेश करके एक नये जीवन दर्शन को प्रस्तुत कर सके।

प्रत्येक युग की समस्याओं की पारस्परिक विभिन्नता का कारण यह है कि विभिन्न युगों में, अथवा प्रत्येक युग में, कला के नये रूपों का प्रादुर्भाव होता है। यह इसलिये कि हर युग में समसामयिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता रहता है और उनकी परिवर्तनशीलता के कारण या तो कला के नये रूपों

का जन्म होता है और या वह विकास के द्वारा नवीनता को प्राप्त होती है। अगर ऐसा न हो तो वह तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को अपने में नहीं प्रतिबिंबित कर पाती है और न सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति दे पाती है या जन-जीवन की समस्याओं के उद्घाटन की शक्ति से संपन्न होती है। और अगर उसमें स्वाभाविक विकास की इस गति का अभाव होता है तो कुछ नई प्रतिभायें, जो सृजनात्मक क्षेत्र में क्रियाशील होती हैं, एक नवीन जीवन-दर्शन की आवश्यकता का अनुभव करती है और उसके प्रवर्तन की दिशा में भी प्रवृत्त होती हैं। और उनमें भी, जिनमें सच्ची प्रतिभा होती है, वही ऐसा करने में समर्थ हो पाते हैं, क्योंकि उनमें से प्रत्येक को तत्कालीन प्रचलित धारणाओं—यहाँ हमारा मतलब मान्यताओं से है—तथा परंपरागत रूढ़ियों का विरोध करना पड़ता है, उनसे संघर्ष करना पड़ता है। अगर वे इस संघर्ष में विजयी होते हैं, तब वे युग प्रवर्तक कहे जाते हैं। और एक युग प्रवर्तक के रूप में, समाज उनका अस्तित्व या महत्व तब तक स्वीकार नहीं करता, जब तक कि उनके द्वारा आर्विभूत परंपरा या मार्ग-प्रशस्ति काफी सीमा तक मान्य न हो जाये।

हमने पुरातनता से ही नवीनता का आविर्भाव माना है। यानी हमने यह कहा है कि साहित्य के विकास के क्रम या इतिहास में एक समय आता है, जब उसमें परिवर्तनशीलता की गति अपेक्षाकृत तीव्र हो जाती है और वह नये रूप ग्रहण करता है। इस रूप-परिवर्तन की प्रक्रिया काफी लंबी होती है अर्थात् वह काफी समय तक समान रूप से, तीव्र गति से क्रियाशील रहती है। मतलब यह कि इसका कोई भी नया रूप जब जन्म लेता है, तब, अपने प्रारंभिक रूप में, उसे पिछले (रूप) से संघर्ष करना पड़ता है, जो परिपक्व और स्थिर हो चुकता है। इस संघर्ष की संभावनायें अनेक हो सकती हैं। एक तो यह, कि पिछला रूप, नये रूप को उगते ही दबा दे, विकसित न होने दे। दूसरी यह कि नया रूप पुराने के मुकाबले में किसी प्रकार स्थिर रहे, अपना अस्तित्व बनाये रहे। और तीसरी यह कि वह अपने उसी रूप में पुराने पर हावी हो जाये और अपनी जड़ें मजबूती से जमा ले।

लेकिन हमारा अनुमान है कि साधारणतया, जैसा कि हम देखते हैं, साहित्य में विकास का कुछ ऐसा क्रम रहा है कि कोई भी नया रूप जब जन्म लेता है, तब स्वभावतया ही प्राचीन द्वारा उसका विरोध होता है। इस

विरोध के फलस्वरूप या तो वह नया रूप नष्ट हो जाता है और या किसी प्रकार बना रहता हुआ क्रमशः विकसित होता रहता है। और जब व अपने विकास की मध्यम अवस्था भी पार कर चुका होता है, अर्थात् अ विकास की अंतिम सीढ़ी या उच्च अवस्था में होता है, तब तक सामान्यतः उसमें इतनी शक्ति आ जाती है, कि वह एक या अनेक पुरानी, लेकिन जमी हुई विचारधाराओं के सत्तारूढ़ होने के बावजूद अपने महत्व की घोषणा कर सके, और उसे बनाये रख सके। और इस स्थिति में साहित्य-विकास-क्रम की स्वाभाविक गति के अनुसार पुरानी विचारधारायें, प्रवृत्तियाँ या वाद एक-एक करके खत्म होने लगते हैं, उनके कदम लड़खड़ाने लगते हैं और वे स्वयं एक परंपरा बन कर अपनी विरासत में नवीन रूप को छोड़ जाते हैं।

हमने कहा है कि आवश्यकतानुसार समय-समय पर साहित्य में नवीनता का आविर्भाव होता चलता है, पुरानी चीजों में नये विकास की संभावनायें दिखाई पड़ने लगती हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि किन्हीं विशेष अवसरों पर नवीनता का आविर्भाव आकस्मिक रूप से होता है, बल्कि सिर्फ यह कि समसामयिक साहित्य-धाराओं में ही, पुरातनता के बीच, नये विकास के रूपों के परिचायक तत्व लक्षित होने लगते हैं अर्थात् उन्हीं पुरातन-सिद्धांतों में नवीनता के बीज फूटते दिखाई देते हैं, और आगे चलकर, विकास को प्राप्त होने पर, वे ही नये रूपों का निर्माण करते है। मतलब यह है कि पुरातनता में ही नवीनता का समावेश रहता है जो स्वयं ही समय पर विकसित होता है।

हम यह कहना चाहते हैं कि साहित्य में नये मोड़ों का उदय किसी समय विशेष, अवसर विशेष अथवा युग विशेष की आवश्यकता के अनुसार नहीं होता है, बल्कि वह साहित्यिक विकास की आवश्यक और स्वाभाविक प्रक्रिया (प्रोसेस) है, जो स्वयं ही, सदैव गतिशील रहती है। उसे किन्हीं वादों, किन्हीं आंदोलनों या किन्हीं प्रवृत्तियों की आवश्यकता नहीं रहती। इनका तो हल्ला तब शुरू होता है, जब ये परिवर्तन विभिन्न स्पष्ट रूप ग्रहण कर लेते हैं और साफ लक्षित होने लगते हैं। अब उन्हें समृद्ध बनाना तथा विभिन्न मानदंडों के अनुसार तौलकर सजाना, सँवारना तथा निखारना प्रतिभाशील साहित्यकारों का कार्य होता है।

———